नवीन पद्य-संग्रह



हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग


हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
हिन्दी-संग्रहालय, प्रयाग

म-साहित्य-माला संख्या—१२

नवीन पद्य-संग्रह

(संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण)



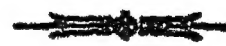
सम्पादक

पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी



प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग



ँचवाँ संस्करण] सम्वत् १९९४ वि० [मूल्य ।।।)

प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग



मुद्रक—सत्यभक्त
दि फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉ
चन्द्रलोक—इलाहाबाद

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराज सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ-साहित्य-माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस "माला" के द्वारा जो हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महोदय को है। श्रीमान् का यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

निवेदक—

मन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग

दो शब्द

'नवीन पद्य-संग्रह' का प्रथम संस्करण आज से सात वर्ष पहले हुआ था। इतनी अवधि में अनेक प्रतिभाशाली कवि सामने आये हैं। उनकी रचनाएँ इस संग्रह में देकर यह परिवर्द्धित संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। पंडित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी ने इस संग्रह को तत्परता-पूर्वक परिवर्द्धित और संशोधित कर इसे अधिकाधिक सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है।

३०—११—३४

उदयनारायण त्रिपाठी
साहित्य-मंत्री

भूमिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने, कई वर्ष हुए, एक पद्य-संग्रह प्रकाशित किया था, जो प्रथमा की परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में था। इधर वह संग्रह कुछ अपर्याप्त-सा जँचने लगा, अतएव यह "नवीन पद्य-संग्रह" प्रकाशित किया जाता है।

हिन्दी में नवीन और प्राचीन कवियों की कविताओं के संग्रह अभी तक बहुत कम प्रकाशित हुए हैं; और जो प्रकाशित भी हुए हैं, वे उच्च कोटि के नहीं हैं। वास्तव में संग्रह करने का कार्य उतना सहज भी नहीं है, जितना लोग उसे समझते हैं। किसी कवि की बहुत-सी कविताओं में से सर्वोत्तम कविता चुन लेना बहुत कठिन काम है। अब तक जो संग्रह प्रकाशित हुए हैं, उनमें कवियों की सर्वोत्तम कविता का समावेश बहुत कम हुआ है। प्रायः देखा जाता है कि संग्रहकारों ने सर्वोत्तम कविता नहीं चुन पाई, और भद्दी कविताओं का समावेश कर दिया।

बहुत-सी चीज़ों में से सर्वोत्तम चीज़ को चुन कर संग्रह कर लेने के लिए सुरुचिपूर्ण पहचान की आवश्यकता होती है; क्योंकि "संग्रह त्याग न बिनु पहचाने"—गोस्वामीजी का कथन बिलकुल ठीक है। सन्तोष की बात है कि इस "नवीन पद्य-संग्रह" के संग्रहकार ने अपनी सुरुचिपूर्ण पहचान का अच्छा परिचय दिया है। इस संग्रह का "नवीन" नाम बिलकुल सार्थक है; क्योंकि इसका ढङ्ग—और इसका रङ्ग—सब नवीन है। प्रत्येक कवि की प्रायः एक ही चुटीली कविता इसमें चुन ली गई है; और ख़ूब चुनी गई है!

इसमें अर्वाचीन काल के ही कवि लिये गये हैं—जिनमें प्रायः बहुत से बिलकुल नवीन और वर्त्तमा: उनकी कविता जब प्राचीन कवियों की कविता से मिलान करके पढ़ी जायगी, तब विचारशील पाठकों को विदित हो जायगा कि वर्तमान युग कविता के लिए "विकासकाल" है अथवा "ह्रासकाल"। फिर भी हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि हमारे अनेक नवयुवक कवि प्रतिभाशाली हैं; और उनकी कविता इस युग को देखते हुए बहुत अच्छी होती है। रमणीयता के साथ उपदेश, जो सच्ची कविता का लक्षण है, उनमें भली भाँति पाया जाता है।

इसके सिवाय वर्तमान हिन्दी-कविता पर पश्चिमी शिक्षा का भी, अब थो दिनों से, प्रभाव बढ़ने लगा है। नवयुवक कवि कविता लिखने के लिए जो विषय चुनते हैं, उनमें प्रायः वे पाश्चात्य कवियों का अनुकरण करते हैं, और बहुत से नवयुवक पाश्चात्य कविता-शैली की नक़ल भी करते हैं। हमारी सम्मति में यह बात, समय को देखते हुए अनिष्ट नहीं कही जा सकती। कवि के लिए सब सुगम है। सृष्टि की किसी क्षुद्र वस्तु को भी वह महान् बना सकता है—उससे वह अपने पाठकों और श्रोताओं का मनोरञ्जन कर सकता है; और जीवन के लिए भी कोई सारतत्त्व दे सकता है। पर कविता का मुख्य गुण 'प्रसाद' उसमें अवश्य होना चाहिए। इसमें यदि प्रमाद हुआ, तो वह "पागल का प्रलाप" ही कहा जायगा।

इस "नवीन पद्य-संग्रह" में नवयुवक कवियों की कविताएँ खूब रखी गई हैं, और उनकी उत्तमोत्तम कविताओं का ही समावेश किया गया है। आशा और विश्वास है कि कविता के विद्यार्थियों—और कविता के प्रेमियों को भी—इस संग्रह से समुचित सन्तोष होगा।

—लक्ष्मीधर वाजपेयी

निवेदन

जब से मुझे हिन्दी-कविता के रसास्वादन का अवसर मिला, तभी से आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली कविताओं के विषय में, उनकी उच्चता और निकृष्टता सम्बन्धी, मेरी एक विशेष धारणा रही है। जब कभी किसी से किसी कवि की रचनाओं के विषय में बातचीत हुई, तब मैंने उससे अपनी उस धारणा का समर्थन ही पाया; कभी मुझे अपनी सम्मति स्वयं प्रकट करनी पड़ी, और कभी अपनी ही जैसी सम्मति उससे भी सुनने का सुअवसर मिला। निदान, मेरे हृदय में यह इच्छा धीरे-धीरे बलवती होती गयी कि हिन्दी के वर्तमान काल के कवियों की रचनाओं का एक ऐसा संग्रह किया जाय, जिसमें सभी प्रसिद्ध कवियों की एक-एक सुन्दर रचना रहे। यदि कभी हम इस संग्रह को उठाकर उसके पन्ने उलटने लगें तो घड़ी-आध-घड़ी को हम उसमें तन्मय हो जायँ और उस समय हम आधुनिक संसार के जीवन-संग्राम की भीषणता और कर्कशता को एकदम भूल जायँ। यदि हम उस समय देश-भक्ति के प्रवाह में बह रहे हों, तो हमें उसके भी कुछ भाव उसमें प्राप्त हों और यदि हम भगवान की आराधना करने का भाव हृदय में रखते हों तो भी हमें उसी में इसका सुअवसर प्राप्त हो। सौभाग्य से यह सुअवसर आज यकायक हाथ आ गया। इसलिये मैं आज इस संग्रह को, जो आपके हाथ में है, उसी इच्छा की एक आंशिक पूर्ति समझकर प्रसन्न हूँ। यदि यह आपको भी प्रसन्न कर सका, तो मैं समझूँगा कि मेरा प्रयत्न सार्थक हुआ।

इस संग्रह के कार्य में हिन्दी की प्राचीन तथा आधुनिक सभी

उच्चकोटि की मासिक पत्र-पत्रिकाओं तथा इस संग्रह के कवियों के काव्य-ग्रन्थों एवं कविता-कौमुदी (द्वितीय भाग) से मुझे सहायता मिली है। एतदर्थ मैं उनके सम्पादकों तथा लेखकों का आभारी हूँ।

सभी आधुनिक कवियों की रचनाएँ संग्रहीत करने के विचार से यह संग्रह नहीं किया गया है। ऐसा विचार होता तो पुस्तक बहुत बढ़ जाती, इसलिये जिन कवियों की रचनाएँ इसमें नहीं आ सकी हैं, वे मुझे क्षमा करें। मैंने कवियों की रचनाओं के चुनाव में इस बात का ध्यान रक्खा है कि जो रचना इस संग्रह में संगृहीत है, वह कवि की उत्कृष्ट रचना कही जाय और समय-समय पर उदाहरण का काम दे। यह कार्य बड़ा कठिन है। सब की रुचि एक-सी तो होती नहीं, रुचि-वैचित्र्य होना मानव-प्रकृति के लिए स्वाभाविक है। इसलिए इस कार्य में यदि मैं कहीं असफल भी रहूँ, तो भी मैं क्षमा का पात्र हूँ।

पहले केवल कविताएँ ही संगृहीत करने का विचार था, पीछे जब कविताएँ छपने लगीं, तो कवियों का संक्षिप्त परिचय भी इसी के साथ रखने का मुझे आदेश मिला। इसलिये परिचय अलग रखा गया।

यदि इस संग्रह में किसी तरह की त्रुटि रह गयी हो, तो पाठक कृपया हमें सूचित करें। आगे हम उनका ध्यान रखकर उचित संशोधन करने का प्रयत्न करेंगे।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
कार्यालय, प्रयाग
गङ्गा-दशहरा
सं० १९८४ वि०

विनीत,

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

परिचय

आधुनिक कविता का विकास इधर जितना संतोषप्रद हुआ है उतना साहित्य के किसी भी अंग का नहीं। हिन्दी कविता तो 'दिन दूनी रात चौगुनी' बढ़ रही है। इस विकास का लक्ष्य अस्पष्ट होते हुए भी भ्रष्ट नहीं है। ऐसी कविता के संग्रह की आवश्यकता आधुनिक काल में तो और भी अधिक है, जिससे हमारा नवयुवक समाज वर्तमान काल की कविता को उमंग और सहानुभूति के साथ पढ़कर हिन्दी के भविष्य साहित्य के निर्माण में सहायक हो। आशा है, हमारे नवयुवक ही नहीं, वरन् समस्त हिन्दी-प्रेमी इस संग्रह से लाभ उठावेंगे।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग
१—८—३७

— रामकुमार वर्मा
(साहित्य-मन्त्री)

———

कवि-परिचय

रसिक-बिहारी

जन्म पौष शुक्ल ७ संवत् १९०१ विक्रमी में झाँसी में हुआ था। जब ये एक वर्ष के हुए तो इनका देहान्त हो गया; परन्तु इन्हें सरयू के प्रवाह में छोड़ा जाने को ही था कि इनमें पुनः जीवन आ गया और इन्होंने आँखें खोल दीं। तभी से इनका नाम जानकीप्रसाद पड़ा था। ये अयोध्या के प्रतिष्ठित कनक-भवन के महन्त थे। इन्होंने २६ पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें अधिकांश प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका रामरसायन ग्रंथ बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

जन्म भाद्र शुक्ल ७ संवत् १९०७ विक्रमी, स्वर्गवास संवत् १९४२ विक्रमी, जन्म-स्थान काशी। इनके द्वारा लिखित, अनुवादित, सम्पादित तथा संगृहीत ग्रन्थों की संख्या १७५ के लगभग है। ये थे तो व्रजभाषा के कवि, पर इन्होंने खड़ीबोली में भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। इसके अतिरिक्त ये संस्कृत, उर्दू, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, पंजाबी, मराठी, बनारसी, अवधी आदि प्रान्तीय भाषाओं में भी कविता लिख लेते थे। ये जैसे उत्कृष्ट कवि थे, वैसे ही गद्यलेखक भी। हिन्दी में नाटकों के जन्मदाता यही माने जाते हैं। ये बड़े ही साहित्य-रसिक, उदार, प्रेमी, सहृदय, भारत, भारती और भारतीयता के सच्चे भक्त थे। वर्तमान हिन्दी-साहित्य के सर्वप्रथम सर्वमान्य महारथी ये ही हैं। हिन्दी-भाषा और साहित्य की इन्होंने जो सेवा की, वह अब तक अद्वितीय मानी जाती है।

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

जन्म भाद्र कृष्ण ६ संवत् १६१२ विक्रमी, स्वर्गारोहण-संवत् १६८० विक्रमी, जन्म-स्थान मिर्ज़ापुर। प्रेमघनजी हिन्दी, फ़ारसी और संस्कृत के अच्छे पंडित और भारतेन्दुजी के सखा थे। इनके लेख तथा इनकी कविताएँ कवि-वचन-सुधा, आनन्द-कादम्बिनी तथा नागरी-नीरद में प्रकाशित हुई हैं। इनके ग्रन्थों के प्रकाशित न होने का एकमात्र कारण यह था कि ये स्वान्तः सुखाय कविता लिखते थे। इन्होंने जो कुछ लिखा, मन की मौज में लिखा। कविता तथा लेख प्रकाशित करने तथा उससे यश, धन और सम्मान प्राप्त करने का भाव इनमें नाममात्र को भी नहीं था। फिर भी इनकी जो कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं और हिन्दी-संसार के लिए सुलभ हैं, उनमें इनकी रसिकता तथा प्रतिभा-पूर्ण कवित्व-शक्ति स्पष्ट रूप से झलकती है। सन् १६१२ ई० में ये कलकत्ता के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में सभापति हुए थे।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र

जन्म आश्विन कृष्ण ६ संवत् १६१३, स्वर्गवास संवत् १६६१। ये कानपुर के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। 'ब्राह्मण' नामक एक मासिक-पत्र भी ये निकालते थे। कुछ दिनों तक ये हिन्दोस्तान के भी सम्पादक रहे थे। इनकी लिखी हुई पुस्तकों की संख्या लगभग २०, अनुवादों की १३ और काव्यों की २ है। ये हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा संस्कृत में अच्छी योग्यता रखते थे। ये हास्यरस-पूर्ण, व्यंग्यात्मक साथ ही शिक्षाप्रद लेख तथा कविता लिखने में बड़े प्रवीण थे। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान की उपासना ही इनके जीवन का व्रत था। इनकी विज्ञापन, हरिगंगा, हिन्दी की हिमायत, तृप्यन्ताम्, बुढ़ापा

तथा गोरक्षा आदि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। ये बड़े साहित्य-रसिक, मन-मौजी, मसखरे और विनोद-प्रिय कवि थे।

साहित्याचार्य्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास

जन्म सम्वत् १६१५ विक्रमी, स्वर्गवास सम्वत् १६५६ विक्रमी, निवास-स्थान काशी। व्यासजी संस्कृत-साहित्य के दिग्गज विद्वान, हिन्दी के बड़े अच्छे लेखक और वक्ता थे। आपने 'पीयूष-प्रवाह' नामक मासिक-पत्र निकाला था। आपही इसके सम्पादक भी थे। आपके लिखे संस्कृत और हिन्दी के ग्रन्थों की संख्या लगभग ७८ है। आपकी गद्य-काव्य-मीमांसा पुस्तक बड़े महत्त्व की है।

पंडित राधाचरण गोस्वामी

जन्म फाल्गुन कृष्ण ५ सम्वत् १६१५ विक्रमी, स्वर्गवास सम्वत् १६८२ वि०, निवासस्थान तथा जन्मभूमि वृन्दावन। गोस्वामीजी इस काल के ब्रज-भाषा-साहित्य के एक दिग्गज पण्डित थे। आपको नवद्वीप की पण्डित-मण्डली से विद्या-वागीश की उपाधि मिली थी। आप बड़े ही मिष्ट-भाषी, स्पष्टवादी और मिलनसार थे। परिहास लिखने में आपको कमाल हासिल था। आपके मिस्टर वूट, भङ्ग-तरङ्ग, बूढ़े मुँह मुँहासे, नापित स्तोत्र, रेलवे-स्तोत्र आदि प्रहसन बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त विदेश-यात्रा-विचार, विधवा-विवाह-विवरण आदि पुस्तकें आपने समाज-सुधार पर भी लिखी थीं। आप सचमुच ही हिन्दी के "बाणभट्ट" थे। आप भारतेन्दु जी के सखा थे और उनको अपना 'उस्ताद' मानते थे। आपने सम्वत् १६४० में 'भारतेन्दु' नाम का एक मासिक-पत्र भी निकाला था। सम्वत् १६८१ में आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के देहरादूनवाले अधिवेशन के सभापति

मनोनीत हुए थे। आपके स्वर्गवास से व्रजभाषा-साहित्य को गहरी क्षति पहुँची है।

रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०

जन्म २० जनवरी सन् १८५८। लालाजी हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत तथा अङ्गरेज़ी के पूर्ण पण्डित तथा फ्रेंच, बँगला, मराठी, गुजराती, आदि भाषाओं के भी ज्ञाता हैं। सन् १८७९ ई० में कलकत्ता-विश्व-विद्यालय की बी० ए० की परीक्षा में इन्होंने सब से उच्च स्थान प्राप्त किया था। सन् १८९० में इन्होंने हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा भी पास कर ली थी। ये सन् १८७९ से सन् १८९४ तक अनेक हाई स्कूलों में सेकन्डमास्टर, हेडमास्टर तथा असिस्टेन्ट इन्स्पेक्टर रहे। सन् १८९५ में ये डिप्टी कलेक्टर हुए और ३२ वर्ष तक सरकार की सेवा करके सन् १९११ में इन्होंने पेन्शन ले ली। आजकल ये प्रयाग में रहकर साहित्यिक जीवन लाभ करते हैं। अङ्गरेज़ी, उर्दू तथा संस्कृत के काव्य, नाटक, इतिहास तथा शिक्षा-विभाग विषयक अन्य विषयों पर इनके लिखित अनुवादों, संग्रहों तथा सम्पादित ग्रन्थों की संख्या ५० से ऊपर है। इस समय हिन्दी के दिवङ्गत हिन्दी-साहित्य-कारों के सम्बन्ध में जितना ज्ञान आपको है उतना बहुत कम लोगों को है। लालाजी ने हिन्दी की जो सेवा की है, वह अमर है। कलकत्ता युनिवर्सिटी के लिए बी० ए० तथा एम० ए० की कक्षाओं के लिए आपने हिन्दी का कोर्स बड़े परिश्रम से तैयार किया है। आपका यह कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण हुआ है।

पंडित नाथूराम "शङ्कर" शर्म्मा

जन्म चैत्र शुक्ल ५ सम्वत् १९१६, निधन सम्वत् १९८९ विक्रमी, जन्म तथा निवास-स्थान हरदुआगञ्ज, अलीगढ़। 'शङ्कर' जी खड़ीबोली के

श्रेष्ठ कवियों में से थे। कई संस्थाओं से आपको कविराज, भारत-प्रज्ञेन्दु, कविताकामिनी-कान्त आदि उपाधियाँ मिल चुकी थीं। इनकी लिखी हुई 'शङ्कर-सरोज' 'अनुराग-रत्न' 'गर्भरण्डारहस्य', 'वायस-विजय' आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें "अनुराग-रत्न" एक महत्त्व-पूर्ण काव्य है। शंकरजी बड़े हँसमुख, मिलनसार, स्पष्टवादी तथा विनोद-प्रिय थे। इनकी कविताओं का जैसा सम्मान हिन्दी-संसार में है, आर्यसमाज में उससे भी अधिक है। इनके पुत्र पंडित हरिशंकरजी शर्म्मा कविरत्न हिन्दी के अच्छे लेखक तथा सुकवि हैं।

बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानु'

जन्म श्रावण शुक्ल १० संवत् १६१६ विक्रमी, निवास-स्थान बिलासपुर (मध्यप्रदेश)। 'भानु'जी हिन्दी-कविता, छन्द-शास्त्र तथा काव्य का सांगोपांग ज्ञान रखते हैं। काव्य-शास्त्र के जैसे ज्ञाता भानुजी हैं वैसे हिन्दी-कवियों में इने-गिने हैं। काव्य के विविध अङ्गों पर इन्होंने जो अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, उनकी संख्या १५ के लगभग है। इन ग्रन्थों में काव्य-प्रभाकर तथा छन्द-प्रभाकर का हिन्दी-संसार में अच्छा मान है। इन्होंने अङ्गरेजी तथा हिन्दी की साधारण योग्यता से उन्नति करते-करते यहाँ तक उन्नति की कि ये असिस्टेन्ट सेटिलमेन्ट ऑफ़िसर तक हो गये। आजकल ये पेंशिन लेकर बिलासपुर में रहते हैं। इनको हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अँगरेजी, मराठी तथा उड़िया पर अच्छा अधिकार प्राप्त है। भानुजी बड़े सहृदय, गुण-ग्राही, मधुर-भाषी तथा दयालु प्रकृति के महानुभाव हैं। सरकार से आपको रायबहादुर तथा रायसाहब की उपाधियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। आप बड़े अच्छे कवि हैं।

पंडित श्रीधर पाठक

जन्म माघ कृष्ण १४ सं० १९१६ निधन संवत् १९८६ विक्रमी। पाठकजी हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी तथा अँगरेज़ी भाषा के पूर्ण पण्डित थे। खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा दोनों में कविता लिखने में ये बड़े कुशल थे। ये प्राकृतिक-सौन्दर्य के परमप्रेमी, सरस हृदय तथा कविता के व्यसनी थे। गोल्डस्मिथ के तीन काव्य-ग्रन्थों का पद्यानुवाद करने में आपने जो पाण्डित्य-पूर्ण प्रतिभा प्रदर्शित की है वह सर्वतो-भावेन सराहनीय है। पञ्चम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के ये सभापति हुए थे। इनके काव्य-ग्रंथों की संख्या १५ के लगभग है। ये खड़ीबोली और ब्रजभाषा के इस काल के श्रेष्ठ कवि थे।

आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी

द्विवेदीजी का जन्म ज़िला रायबरेली के दौलतपुर ग्राम में वैशाख शुक्ल ४ संवत् १९२१ में हुआ। द्विवेदीजी हिन्दी-साहित्य के महारथी हैं। वे जीवन-भर में जहाँ कहीं भी रहे, वहाँ अपने बुद्धि-बल तथा अदम्य उत्साह से योग्यता-प्रदर्शन में सर्वथा सफल हुए। इनका जीवन अपने ही पुरुषार्थ से बना हुआ है। द्विवेदीजी की सी विद्वत्ता, गद्य-लेखन-कुशलता, समालोचन में निर्भीकता हिन्दी के किसी भी लेखक में अब तक नहीं है। ऐसा कोई विषय नहीं, ऐसा कोई शास्त्र नहीं, जहाँ हमारे पूज्यपाद द्विवेदीजी की दृष्टि न गई हो। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, काव्य तथा दर्शन कोई भी शास्त्र आप से छूटा नहीं है। आपने जिस विषय पर लेखनी उठाई, उसे अपनी असाधारण प्रतिभा के बल से सुन्दर बना दिया। आप स्वयं कवि हैं तथा कविता के मर्मज्ञ पण्डित भी हैं। आपने कविता और कवियों के लिए कभी-कभी जो विचार प्रकट किये हैं वे वास्तव में साहित्यकारों के लिए

सदियों तक पथ-प्रदर्शक का काम करेंगे। आप वृद्ध होने पर भी अब तक हिन्दी की वैसी ही अनुराग के साथ सेवा कर रहे हैं। आपके द्वारा लिखित, सम्पादित तथा अनुवादित ग्रन्थों की संख्या तीस के ऊपर है। मई सन् १९३३ ई० के प्रथम सप्ताह में, इनके जीवन का ७० वाँ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने इनको अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट कर तथा प्रयाग-वासी हिन्दी-भाषा-भाषियों और साहित्यकारों ने अखिल भारतीय-द्विवेदी-मेला मनाकर इनका जो सम्मान किया, हिन्दी-भाषा के साहित्यकारों में किसी का भी अभी तक वैसा सम्मान होते नहीं देखा गया।

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय

इनका जन्म वैशाख कृष्ण ३ सम्वत् १९२२ में हुआ। ये बदायूँ के रहनेवाले थे, किन्तु कई पीढ़ियों से आजमगढ़ के जिले में बस गये। उपाध्यायजी को हिन्दी के प्रति बड़ा प्रेम है। आपने जीवन भर हिन्दी की जो सेवा की है, वह सराहनीय है। आप सरकारी पद पर रहते हुए भी बराबर साहित्य-सेवा में रत रहे हैं। ये जैसे प्रवीण गद्य-लेखक हैं, वैसे ही सुकवि भी। ये सरलतर और कठिनतम भाषा लिखने में सिद्धहस्त हैं। ये दिल्ली-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हो चुके हैं और आजकल काशी-विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक हैं। इनका प्रियप्रवास अमर महाकाव्य है। ये इस काल के खड़ी बोली के महाकवि माने जाते हैं। हाल ही में इनका 'रस-कलश' नामक एक और बहुत ही सुन्दर ब्रजभाषा का काव्य प्रकाशित हुआ है।

बाबू राधाकृष्णदास

बाबू राधाकृष्णदास बाबू हरिश्चन्द्रजी के फुफेरे भाई थे, और पिता तथा बड़े भाई की मृत्यु के कारण इनका संरक्षण बाबू हरिश्चन्द्र

द्वारा ही हुआ था। इसका जन्म संवत् १६२८ श्रावण-पूर्णिमा को हुआ था। इन्होंने अस्वस्थ रहते हुए भी एन्ट्रेन्स तक अध्ययन कर लिया था। इसके अतिरिक्त ये भारतीय अन्य उन्नत भाषाएँ भी जानते थे। इनकी प्रतिभा का इसीसे परिचय मिल जाता है कि इन्होंने १५ वर्ष की अवस्था में 'दुखिनी बाला' नामक रूपक लिखा था। इनकी कविता बड़ी सरस होती थी। इन्होंने बीस-पचीस ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें राजस्थान-केसरी 'प्रताप' नामक नाटक सर्वोत्तम समझा जाता है।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

गुप्तजी का जन्म कार्तिक शुक्ल ४ संवत् १६२२ को हरियाणा प्रान्त में हुआ था। ये हिन्दी के सुकवि, प्रवीण लेखक, समालोचक तथा हिन्दी के प्रसिद्ध पत्र "भारतमित्र" के संपादक थे। अन्य कई पत्रों का भी इन्होंने सम्पादन किया था। इनके असमय में ही इस संसार से बिदा हो जाने के कारण हिन्दी को बड़ी क्षति पहुँची। गुप्तजी का स्वभाव बड़ा ही सरल और विनोद-प्रिय था। इनकी लिखी तथा अनुवाद की हुई लगभग ८ पुस्तकें हैं।

पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी

इनका जन्म संवत् १६२२ माघ कृष्ण ३० को हुआ था। इन्होंने काशी में अपने नाना के यहाँ विद्याध्ययन किया था। ये संस्कृत-साहित्य के कई विषयों में पारङ्गत थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इनके मित्रों में से थे। इन्होंने अपने जीवन में कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया था। ये हिन्दी के प्रथम उपन्यास-लेखक माने जाते हैं। इनकी अनुवादित एवं मौलिक पुस्तकें २०० से ऊपर हैं। इनका जीवन वास्तव में साहित्यमय था। इनकी कविता बड़ी ललित

और हृदय-ग्राहिणी है। वास्तव में इन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की। दुःख की बात है कि ज्येष्ठ कृष्णा ७ संवत् १९८९ विक्रमी को इनका स्वर्ग-वास हो गया।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

जन्मतिथि मार्गशीर्ष कृष्ण १३ संवत् १९२५ वि०, जन्मस्थान जबलपुर; परन्तु पीछे से भदरस (जिला कानपुर) में आ बसे थे। ये हिन्दी के उन नामी कवियों में थे, जिनसे हिन्दी के लिए बहुत कुछ आशा की जा सकती थी; लेकिन असमय में ही इनकी मृत्यु हो जाने से वह आशा फलवती न हो सकी। ये कानपुर के प्रसिद्ध वकील और विद्वान थे। ये कविता व्रजभाषा में ही करते थे। इनकी लिखी हुई पुस्तकों में चन्द्रकला-भानुकुमार, धाराधर-धावन नामक नाटक और मेघदूत का हिन्दी-पद्यानुवाद प्रसिद्ध हैं। ये ऊँची श्रेणी के कवि थे। इनकी कविताओं का एक संकलन 'पूर्णसंग्रह' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

डॉ० भगवानदास, एम० ए०

जन्म १२ जनवरी सन् १८६९ ई०, निवास-स्थान "विश्राम" चुनार, मिर्जापुर। आप दर्शन-शास्त्र के पूर्ण पण्डित, अँगरेज़ी और हिन्दी के ऊंचे दरजे के लेखक हैं। भारतीय धर्मशास्त्र पर भी आपका बड़ा गम्भीर अध्ययन है। अंगरेज़ी तथा हिन्दी में आपने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आपने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं, जो समय-समय पर 'श्रीशारदा' में प्रकाशित हुई हैं। हिन्दी से आपका बड़ा अनुराग है। हिन्दी-लेखकों में आप जैसे विद्वान् इने-गिने हैं, और दर्शन-शास्त्र में तो आपकी श्रेणी के विद्वान भारतवर्ष में दो-चार ही मिलेंगे। आप सम्मेलन के कलकत्ते वाले एकादश अधिवेशन के सभापति हो चुके हैं। सम्मेलन के हिन्दी-

विद्यापीठ की संस्थापना पहले-पहल आप ही के द्वारा हुई थी। काशी का विद्यापीठ आपके ही परिश्रम और उद्योग का फल है।

पंडित माधवप्रसाद मिश्र

निवास-स्थान झझ्झर जिला रोहतक, जन्म संवत् १९२८ विक्रमी। ये 'सुदर्शन' के सम्पादक, हिन्दी के अच्छे लेखक, कवि और वक्ता थे। इन्होंने विशुद्ध चरितावली तथा सम्राट विक्रमादित्य आदि पुस्तकें लिखी हैं। ४० वर्ष की अवस्था में ही इनका स्वर्गवास हो जाने से हिन्दी की बड़ी हानि हुई।

लाला भगवानदीन 'दीन'

लालासाहब का जन्म जिला फ़तेहपुर के बरवट ग्राम में श्रावण शुक्ल ६ संवत् १९२३ को हुआ था। ये हिन्दू-विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक थे। ये हिन्दी के उत्कृष्ट काव्य-मर्मज्ञ, प्रसिद्ध समालोचक और टीकाकार थे। ये बहुत समय तक 'लक्ष्मी' का सम्पादन कर चुके थे। इनके द्वारा लिखित कविता-पुस्तकों, प्राचीन कवियों के ग्रन्थों पर की गई टीकाओं, तुलनात्मक समालोचना-ग्रन्थों तथा अलंकार-ग्रन्थों की संख्या १५ के लगभग है। 'दीन' जी जैसे प्राचीन हिन्दी-कविता के मर्मज्ञ विद्वान् हिन्दी-संसार में इने-गिने हैं। दुःख की बात है कि चार वर्ष हुए, इनका स्वर्गवास होगया। काशी का साहित्य-विद्यालय, जिसका नाम अब लाला भगवानदीन-साहित्य-विद्यालय है, मुख्यतः इन्हीं के त्याग और लगन से जन्मा और उत्थित हुआ।

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर', बी० ए०

इनका जन्म भादों सुदी ५ संवत् १९२३ को काशी में हुआ था। पहले ये फ़ारसी भाषा की ओर अधिक आकृष्ट थे, परन्तु बाद को

हिन्दी की ओर आ गये। ब्रजभाषा के ये बहुत बड़े विद्वान् थे। इन्होंने हिंडोला, समालोचनादर्श, साहित्य-रत्नाकर, घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर, सत्यहरिश्चन्द्र, गंगावतरण तथा उद्धवशतक आदि अनेक पुस्तकें लिखी हैं। सतसई पर इन्होंने बिहारी-रत्नाकर नाम की एक बहुत अच्छी टीका लिखी है। इनकी कविता बड़ी उच्चकोटि की और भावमयी है। इस काल के ब्रजभाषा के कवियों में इनका स्थान सब से ऊँचा माना जाता है। दुःख की बात है कि संवत् १९८९ में इनका स्वर्गवास हो गया।

श्री सेठ कन्हैयालाल पोद्दार

जन्म भाद्रपद संवत् १९२८ विक्रमी, जन्म-स्थान मथुरा। पोद्दारजी काव्य-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं। आपके लिखे ग्रन्थ काव्य-कल्पद्रुम, हिन्दी-मेघदूत-विमर्श, भर्तृहरिशतक, पञ्चगीत तथा गङ्गालहरी हैं, जिनमें पिछले चारों पद्यानुवाद हैं। पोद्दारजी को साहित्य-सेवा से इतना प्रेम है कि वे अपने व्यावसायिक कार्यों से अवकाश निकालकर भी इतना काम कर रहे हैं। आपकी लिखी कई कविताएँ, जो समय-समय पर सरस्वती में प्रकाशित हुई हैं, बहुत सुन्दर हैं। आप काव्य-शास्त्र के पंडित और सुप्रसिद्ध कवि हैं।

पंडित रामचरित उपाध्याय

इनका जन्म संवत् १९२९ कार्तिक कृष्ण ४ रविवार को गाज़ीपुर में हुआ। इनकी बुद्धि बचपन से बड़ी विलक्षण थी, जिसके कारण इन्होंने थोड़े ही समय में अक्षर-ज्ञान के साथ-साथ संस्कृत-व्याकरण का बोध कर लिया और आचार्य के कई खण्ड काशी में जाकर पास किये। अब आप घर ही पर रह कर शांत जीवन व्यतीत करते हैं।

पहले आप पुराने ढङ्ग की कविता लिखते थे; पीछे से आप का ध्यान खड़ी बोली की ओर आकृष्ट हुआ। आप खड़ीबोली के लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों में हैं। आपकी कविता भाव-प्रधान साथ ही उपदेशप्रद भी होती है। आपकी खड़ीबोली की निम्नलिखित कविता-पुस्तकें प्रसिद्ध हैं:—देवी दौपदी, देवदूत, रामचरित-चन्द्रिका, उपदेश-रत्नमाला, मेघदूत, विचित्र विवाह, रामचरित-चिन्तामणि। 'रामचरित-चिन्तामणि' आपका महाकाव्य है। वर्तमान हिन्दी-कवियों में उपाध्यायजी एक विशेष स्थान रखते हैं।

श्री सैयद अमीरअली 'मीर'

जन्म कार्तिक बदी २, संवत् १९३० को मध्यप्रदेश में हुआ। १९८२ में टीचर्स परीक्षा जबलपुर से पास की और एक स्कूल में ड्राइङ्ग-मास्टर नियुक्त हुए। एक वर्ष काम करने के बाद बॉम्बे-स्कूल-आफ़-आर्ट के लिए ट्रेनिङ्ग टीचर्स स्कालरशिप प्राप्त की, पर आँख की बीमारी के कारण वहाँ अधिक दिन न रह सके। सत्रह रुपये मासिक की मास्टरी से प्रारम्भ करके आप पुलिस की इन्सपेक्टरी, और तहसीलदारी, दूसरे दरजे की मैजिस्ट्रेटी के पद पर पहुँच चुके हैं। आप शांत, गम्भीर, मिलनसार और गोरक्षा के पक्षपाती हैं। आपको साहित्य-रत्न, काव्य-रसाल आदि उपाधियाँ मिली हैं। आपकी 'बूढ़े का ब्याह', 'सदाचारी बालक' तथा 'मातृभाषा की महत्ता' आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी-संसार में आधुनिक मुसलमान कवियों में आपका नाम बहुत आदर और प्रेम के साथ लिया जाता है।

पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

जन्म संवत् १९३२ वि० निवास-स्थान मलयपुर, मुँगेर। चतुर्वेदी जी हन्दी गद्य-लेखकों में ऊँचा स्थान रखते हैं। आपके लेख तथा

भाषण बड़े सरस, भावपूर्ण, व्यंग्य और हास्य से पूर्ण होते हैं। कविता भी आप अच्छी लिखते हैं। इसके अतिरिक्त आप समालोचक भी हैं। आपके लिखे ग्रन्थों की संख्या, जिनमें साहित्यिक भाषण, समालोचना, नाटक, उपन्यास तथा काव्य हैं, १५ से ऊपर हैं। चतुर्वेदीजी साहित्यरसिक, मधुरभाषी, हास्य-रस के प्रेमी, मिलनसार और हिन्दी-साहित्य के सच्चे सेवक हैं। द्वादश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति हो चुके हैं।

पंडित कामताप्रसाद गुरु

जन्म संवत् १९३२ वि०, जन्म-स्थान सागर, मध्यप्रदेश। आजकल मेल-नार्मल-स्कूल जबलपुर में हिन्दी-साहित्य और व्याकरण के शिक्षक हैं। व्याकरण-सम्मत लेख तथा कविता लिखने में ये सिद्ध-हस्त हैं। इनकी कविताएँ प्रसाद-पूर्ण तथा भावमयी होती हैं। इन्होंने सत्य-प्रेम, पार्वती और यशोदा उपन्यास, भौमासुर-बध तथा विनय-पचासा नामक व्रजभाषा काव्य; भाषा-वाक्य-पृथक्करण तथा सहज हिन्दी-रचना नामक व्याकरण ग्रन्थ तथा अत्याचारी एवं पद्य-पुष्पावली नामक खड़ीबोली की कविता-पुस्तकें लिखी हैं। इनका लिखा हिन्दी-व्याकरण हिन्दी-जगत् में सर्वमान्य समझा जाता है। ये खड़ीबोली के सुकवि तथा समालोचक हैं।

पंडित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० तथा पं० शुकदेव-विहारी मिश्र, बी० ए०

पंडित श्यामविहारी मिश्र एम० ए० का जन्म भाद्रपद कृष्ण ४ संवत् १९३० में तथा पंडित शुकदेवविहारी मिश्र का जन्म संवत् १९३५ वि० में हुआ। इनके लिखे हुए ग्रन्थों की संख्या २० के ऊपर है। इन

ग्रन्थों में २ नाटक, १ उपन्यास, ३ काव्य, २ इतिहास, ३ संग्रह-ग्रन्थ, २ धार्मिक, २ समालोचनात्मक तथा शेष विविध विषयों पर हैं। इनके ग्रन्थों में हिन्दी-नवरत्न, मिश्रबन्धु-विनोद ४ भाग तथा भारतवर्ष का इतिहास २ भाग—ये ग्रन्थ बहुत महत्व-पूर्ण हैं। इनके लिखने में इन्होंने जो श्रम किया है, वह वास्तव में श्लाघ्य है। हिन्दी-साहित्य की जो सेवा मिश्रबन्धुओं ने की है, वह अमर है। उपर्युक्त मिश्रद्वय सुकवि भी हैं और समालोचक भी। समाज-सुधार के तो वे प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। हिन्दी-साहित्य-सेवियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है।

पंडित गिरिधर शर्मा "नवरत्न"

जन्म ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी सम्वत् १९३८ विक्रमी, निवास-स्थान झालरापाटन (राजपूताना)। नवरत्नजी बड़े अच्छे कवि हैं। आप हिन्दी के सिवा संस्कृत और गुजराती में भी कविता लिखते हैं। इन भाषाओं के अतिरिक्त आपको उर्दू, मराठी, बँगला और प्राकृत का भी अच्छा ज्ञान है। आपके लिखे, अनुवादित तथा सम्पादित ग्रन्थों की संख्या २० के लगभग है। इन्दौर में मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति, झालरापाटन में राजपूताना हिन्दी-साहित्य सभा तथा भरतपुर में हिन्दी-साहित्य-समिति के संस्थापन तथा कार्य-सञ्चालन में आपका मुख्य हाथ रहा है। अनेक विद्वत्समाजों से आपको "नवरत्न" "महोपदेशक" तथा "व्याख्यान-भास्कर" की उपाधियाँ मिली हैं। आप हिन्दी के अच्छे लेखक, कवि तथा वक्ता, बड़े मिष्टभाषी, मिलनसार और सहृदय हैं।

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, एम० ए०, एल-एल० बी०

जन्म संवत् १९३९, निवास-स्थान प्रयाग। टण्डन जी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल पृष्ठपोषक, उन्नायक तथा सेवक हैं। आपने अभी तक

यद्यपि कोई उत्कृष्ट ग्रन्थ नहीं लिखा; तथापि हिन्दी की उन्नति में आपका श्रेष्ठतम तथा व्यावहारिक हाथ रहा है। 'अभ्युदय' का जब जन्म हुआ था, तब प्रारम्भ में आप ही उसके मुख्य संपादक थे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के जन्म से लेकर अब तक उसे एक आदर्श संस्था बनाने में आपका मुख्य रूप से करावलंब रहा है। कानपुर-सम्मेलन के अवसर पर आपने सभापति की हैसियत से जो भाषण दिया था, हिन्दी-साहित्य के विषय में आपकी विद्वत्ता उससे स्पष्ट झलकती है। विद्यार्थी-जीवन में आपने कई पुस्तकें लिखी थीं, उनमें एक राजनीतिक व्यंग्य-काव्य भी था। टंडनजी एक प्रभावशाली वक्ता, राष्ट्रधर्म के अनुयायी, देशभक्त और संयुक्तप्रान्त के रत्न हैं।

पंडित माधव शुक्ल

जन्म सवत् १९३८ वि०, जन्म-स्थान प्रयाग है, किंतु आजकल ये कलकत्ते में रहते हैं। शुक्लजी हिंदी के राष्ट्रीय कवि हैं; क्योंकि आपकी रचनाओं में देशभक्ति की प्रचुरता है। आपने भारत-गीताञ्जलि, महाभारत-नाटक, स्वराज्य-गायन, सामाजिक चित्रदर्पण तथा राष्ट्रीय तरङ्ग आदि अनेक कविता-पुस्तकें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त आपने महाभारत भी, श्री राधेश्याम जी कथावाचक की रामायण के ढङ्ग पर, हाल ही में लिखा है। आप संस्कृत, अङ्गरेजी, बङ्गला तथा गुजराती का भी ज्ञान रखते हैं। आप हिंदी के श्रेष्ठ कवि, गायक और नाटककार हैं।

पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

जन्म श्रावण शुक्ल १३ संवत् १९४० वि०, निवास-स्थान हड़हा जिला उन्नाव है। इनका उपनाम 'सनेही' तथा 'त्रिशूल' है। सनेहीजी इस काल के खड़ीबोली के श्रेष्ठतम कवियों में हैं। हिंदी के अतिरिक्त आप उर्दू में

भी अच्छी कविता लिखते हैं। आप उर्दू तथा हिंदी काव्य के अच्छे पण्डित हैं; संस्कृत भी जानते हैं। आप पहले उन्नाव जिले के वर्नाक्यूलर फ़ाइनल स्कूलों में सेकण्ड मास्टर; हेडमास्टर तथा उन्नाव ट्रेनिङ्ग स्कूल के हेडमास्टर रहे हैं। आजकल आप कानपुर में ही साहित्यिक जीवन-लाभ करते हैं। आपकी लिखी प्रेम-पचीसी, कुसुमांजलि, कृषक-क्रंदन तथा त्रिशूल-तरङ्ग पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आपकी कुछ पुस्तकें अभी अधूरी होने के कारण अप्रकाशित भी हैं। सनेही जी तत्काल-रचना लिखने में बड़े सिद्धहस्त हैं। भरतपुर में हिंदी-साहित्य सम्मेलन के अवसर पर जो कवि-सम्मेलन हुआ था, उसके आप सभापति हुए थे। आप बड़े प्रतिभाशाली कवि, स्वभाव के बड़े सरल तथा उदार हैं। आपकी श्रेणी के प्रतिभाशाली कवि हिन्दी में इने-गिने हैं। आजकल आप "सुकवि" नामक एक कविता-सम्बन्धी मासिक-पत्र के सञ्चालक और सम्पादक हैं।

पंडित रूपनारायण पांडेय

जन्म आश्विन शुक्ल १२, संवत् १९४१ विक्रमी, जन्म-स्थान तथा निवास-स्थान लखनऊ। पाण्डेयजी का उपनाम 'कमलाकर' है। आप उच्चकोटि के कवि, संस्कृत तथा बंगला भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं। बँगला के उपन्यासों का शुद्ध, सरस और यथातथ्य अनुवाद करने में आपको कमाल हासिल है। आपके द्वारा लिखित, सम्पादित, अनुवादित तथा संग्रहीत ग्रन्थों की संख्या ६० से ऊपर है। लखनऊ से प्रकाशित "माधुरी" के आप शुरू से ही सम्पादक रहे हैं। अपने संपादन-काल में आपने माधुरी को ऐसे अच्छे ढङ्ग से निकाला कि हिंदी की मासिक पत्र-पत्रिकाओं का दर्जा (स्टैंडर्ड) ही शीघ्र उन्नत हो गया। पांडेय जी बड़े अध्यवसायी, सुशील, मिलनसार और साहित्य-रसिक हैं। आपकी

कविताओं का एक संकलन भी 'पराग' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल

जन्म आश्विन शुक्ल पूर्णिमा संवत् १९४१ विक्रमी, निवास-स्थान: दुर्गाकुंड, काशी। शुक्लजी हिन्दी-साहित्य के प्रकाण्ड पंडित, अँगरेज़ी में भी लेख लिखने में परम प्रवीण, एक प्रतिभाशाली कवि तथा ऊँचे दरजे के समालोचक हैं। फुटकर निबन्धों तथा कविताओं के अतिरिक्त आपके द्वारा लिखित, सम्पादित, अनुवादित एवं संग्रहीत ग्रन्थों की संख्या १५ से ऊपर है। आपके लिखे सभी ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं। तुलसी, सूर तथा जायसी पर आपका अध्ययन बहुत गम्भीर है। आपके नवीन ग्रन्थों में 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' तथा 'काव्य में रहस्यवाद' बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य के समालोचकों में इस समय आप सर्वश्रेष्ठ विद्वान् माने जाते हैं। आजकल आप हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में हिन्दी के प्रोफ़ेसर हैं।

पण्डित सत्यनारायण कविरत्न

जन्म माघ शुक्ल ३ संवत् १९४१ विक्रमी, स्वर्गारोहण १८ अप्रैल सन् १९१८ ई० में हुआ। सत्यनारायणजी अपने समय के व्रजभाषा के कवियों में सर्वोच्च स्थान रखते थे। यों तो इनकी लिखी हुई अनेक पुस्तकें निकली हैं; पर देशभक्त होरेशस, उत्तररामचरित तथा मालती-माधव नाटक उनमें मुख्य हैं। इनकी लिखी हुई कुछ उत्कृष्ट कविताओं का संग्रह "हृदय तरङ्ग" नाम से प्रकाशित हो चुका है। इन्होंने रघुवंश के भी

कुछ सर्गों का सुन्दर अनुवाद किया था, पर यह कार्य अधूरा ह रहा। सत्यनारायण जी ब्रजभाषा के सच्चे भक्त थे। उनकी लिखं कुछ रचनाएँ तो बहुत ही सुन्दर तथा मनोमुग्धकारी हैं। कवित पढ़ने का इनका ढङ्ग ही निराला था। इनके स्वर्गवास से ब्रज भाषा की कविता को बड़ी क्षति पहुँची। सत्यनारायणजी बड़े सीधे-सादे, सादगी के अभिमानी सेवक, बड़े सहृदय और भावुक, मृदुभाषी, मिलनसार, निरभिमानी और एक प्रतिभाशाली कवि थे। यदि ये अधिक जीवित रहते तो अपने काल के महाकवि होते। खेद की बात है कि इन्हें अपने जीवन-काल में उचित सम्मान नहीं प्राप्त हुआ और अपनी आकांक्षाओं को अपने हृदय के एक कोने में छिपाकर अल्पायु में ही यह कवि इस धराधाम से उठ गया।

पण्डित मन्नन द्विवेदी गजपुरी, बी० ए०

जन्म संवत् १९४२, निवास-स्थान ज़िला गोरखपुर। इन्होंने गवर्नमेंट कॉलेज बनारस से बी० ए० की परीक्षा पास की। ये जब अँगरेज़ी के छठे दर्जे में थे तभी से पत्र-पत्रिकाओं में लिखने लगे थे। इनकी लिखी हुई रामलाल उपन्यास, मुसलमानी राज्य का इतिहास (दो भाग), भारतवर्ष के प्रसिद्ध पुरुष, बन्धुविनय, धनुष-भंग, आर्य-ललना आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। दुःख की बात है कि संवत् १९७८ में इनका देहान्त हो गया। उस समय ये आजमगढ़ में तहसीलदार थे और नौकरी छोड़ने का निश्चय कर चुके थे। आप बड़े अच्छे लेखक थे। भाषा आपकी बड़ी सजीव होती थी।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

जन्म संवत् १९४३ विक्रमी, जन्मस्थान चिरगाँव, ज़िला झाँसी। गुप्त जी इस काल के खड़ीबोली के कवियों में बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं।

आपके लिखित मौलिक तथा अनुवादित काव्य ग्रन्थों की संख्या २५ के लगभग है, जिनमें कुछ नाटक तथा स्फुट रचनाओं के संग्रह भी हैं। इनके काव्य-ग्रन्थों में 'भारत-भारती' ने बहुत मान पाया और कविता की मनोहरता की दृष्टि से इनका 'जयद्रथ-बध' काव्य बहुत सुन्दर हुआ है। इनकी कविताओं ने भारतीय नवयुवकों में राष्ट्रीय भावों के जागरण का बहुत बड़ा काम किया है। गत वर्ष इनका "साकेत" नामक एक महाकाव्य प्रकाशित हुआ है। हिन्दी-काव्य-जगत् में ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रयत्न इधर अनेक वर्षों से नहीं हुआ था। गुप्तजी संस्कृत तथा बँगला अच्छी जानते हैं। आप बड़े मिलनसार, सहृदय और प्रतिभाशाली कवि हैं। हम इनको इस काल का महाकवि मानते हैं।

श्रीमान् रायकृष्णदास

ये काशी के एक प्रतिष्ठित रईस तथा सुकवि हैं। गद्य-काव्य लिखने में ये बड़े कुशल हैं। इनके कई गद्य-काव्य तथा कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कविताएँ बड़ी भावमयी होती हैं। इनकी अवस्था इस समय ४७ वर्ष के लगभग होगी। इनका भारती-भंडार इस समय हिन्दी में ग्रन्थ-प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय

जन्म पौष शुक्ल १० संवत् १९४३ विक्रमी, जन्म तथा निवास-स्थान बालपुर, पोस्ट चन्द्रपुर, ज़िला बिलासपुर। पाण्डेय जी एक कवि तथा लेखक ही नहीं, वरन् प्राचीन साहित्य के तत्त्वान्वेषक भी हैं। आप संस्कृत, बँगला, उड़िया तथा अंगरेज़ी के अच्छे ज्ञाता हैं। हिन्दी में आपकी लिखी ११ कविता-पुस्तकें, उड़िया में ३ तथा अंगरेज़ी में भी ५-७ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अब आपकी प्रवृत्ति साहित्य के

अनुसंधान की ओर विशेष रूप से रहती है। इस कार्य में आप २० वर्षों से तत्पर हैं। आप मध्यप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हो चुके हैं। मध्यप्रान्त के साहित्य-सेवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। आप हिन्दी तथा उड़िया के अच्छे विद्वान तथा कवि हैं।

पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी

जन्म चैत्र १० संवत् १९४४ विक्रमी, जन्म-स्थान मैथा जिला कानपुर। आजकल प्रयाग (दारागञ्ज) में अपनी तरुण-भारत-ग्रन्थावली का संचालन तथा सम्पादन करते हैं। वाजपेयीजी हिन्दी के नामी लेखक और कवि हैं। आपने सप्रेजी के साथ रहकर दासबोध, रामदास-चरित, शालोपयोगी भारतवर्ष इत्यादि कई ग्रन्थ लिखे और हिन्दी-केसरी का सम्पादन किया। आपने ३ वर्ष तक आर्यमित्र (आगरा) तथा ५ वर्ष तक हिन्दी-चित्रमय-जगत् (पूना) का सम्पादन बड़ी योग्यता के साथ किया है। आप मराठी भाषा तथा साहित्य के मर्मज्ञ हैं, संस्कृत और बँगला का भी ज्ञान रखते हैं। आपकी लिखित, अनुवादित, सम्पादित पुस्तकों की संख्या ३० से ऊपर है। १४ वर्ष की अवस्था तक ही पाठशाला की वर्नाक्युलर फ़ाइनल की नियमित शिक्षा पूर्ण कर आपने अपने ही परिश्रम, अध्यवसाय और अध्ययन से इतनी उन्नति की है। आप बड़े ही निरभिमानी, सादे, सदाचार-परायण, सहृदय साहित्यरसिक और सच्चे साहित्य-सेवी हैं। आपने 'गार्हस्थ्य-शास्त्र' तथा 'धर्मशिक्षा' नामक पुस्तकों की रचना बड़े परिश्रम और विद्वत्ता के साथ की है। आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य-मन्त्री भी थे।

पण्डित शिवाधार पाँडेय, एम्० ए०, एल-एल्० बी०

जन्म शिवरात्रि संवत् १९४४, निवास-स्थान कानपुर। सन् १९०७ में एम० ए० पास किया, १९०८ में एल्-एल्० बी०। कुछ समय तक

वकालत की, फिर म्योर कॉलेज में प्रोफ़ेसर हो गये। आप बड़े गम्भीर, नम्र, विनयशील और सीधा-सादा जीवन व्यतीत करने वाले हैं। आपके 'समर्पण' तथा 'पदार्पण' नामक छोटे-छोटे काव्य प्रकाशित हो चुके हैं। कविता में बहुत ही सीधे-सादे शब्दों का प्रयोग करके उसे हृदयहारिणी बना देना आपका अपूर्व चमत्कार है। आजकल आप इलाहाबाद-यूनीवर्सिटी में रीडर हैं। आप हिन्दी-कविता के एक मर्मज्ञ विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि हैं।

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी

जन्म चैत्र ११ संवत् १९४५, निवास-स्थान खँडवा (मध्यप्रदेश) गाँव के मदरसे में शिक्षा समाप्त कर आपने नार्मल पास किया और अध्यापक हो गये। आपने अङ्गरेज़ी का स्वतन्त्र रूप से अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। आजकल आप 'कर्मवीर' के संपादक हैं। आपका लिखा 'कृष्णार्जुन-युद्ध' एक सुन्दर नाटक है। राष्ट्रीय कवियों में आपका अग्र स्थान है। देश पर ऐसी भावपूर्ण मार्मिक कविताएँ बहुत कम लोगों ने रची हैं। आप एक सच्चे भारत-भक्त, भावुक और प्रतिभा-शाली कवि हैं। आपने 'साहित्य-देवता' नामक एक बहुत सुन्दर गद्य-काव्य लिखा है।

श्री जयशंकर 'प्रसाद'

जन्म माघ शुक्ल १० संवत् १९४६ में काशी में हुआ। आपने क्वींस कॉलेजियट स्कूल से १२ वर्ष की अवस्था में मिडिल पास किया। पिता के स्वर्गवास के कारण, घर, ज़मींदारी, दूकान और कारख़ाने का भार सम्हालने को विवश होने से, संस्कृत, अँगरेज़ी, उर्दू, फ़ारसी आदि की योग्यता अध्यापकों को रखकर घर पर ही प्राप्त की। आप एक प्रतिभाशाली

कवि, कहानी-लेखक और सफल नाटककार हैं। आपके विशाख, अजात-श कामना, नागयज्ञ, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त; नाटक छाया और प्रतिध्वनि गल संग्रह; 'आँसू' आदि कविताओं के कई संग्रह तथा 'कंकाल' और 'तितल उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी

जन्म संवत् १९४६ विक्रमी, जन्मस्थान कोइरीपुर, जिला जौनपुर इन्होंने 'मिलन' तथा 'पथिक' नामक काव्य लिखकर तथा 'कविता-कौमुदी ग्रन्थमाला सम्पादित कर अच्छा यशोपार्जन किया है। गद्य में भी इन्होंने कई छोटी-मोटी पुस्तकें लिखी हैं। इनकी कविता बड़ी भावमयी होती है इन्होंने अपनी ही योग्यता, परिश्रम तथा अध्यवसाय के बल पर उन्नति की है। यह प्रयाग के हिन्दी-मंदिर के स्वामी, पुस्तक-विक्रेता और ऊँची श्रेणी के प्रकाशक तथा कवि हैं। थोड़े दिनों से आप कहानी तथा नाटक-रचना-क्षेत्र में भी अग्रसर हो रहे हैं।

बाबू द्वारकाप्रसाद गुप्त "रसिकेन्द्र"

जन्म-तिथि मार्गशीर्ष पूर्णिमा संवत् १९४६ विक्रमी, जन्मस्थान काल्पी। आपकी आत्मार्पण (खण्डकाव्य), अज्ञातवास (नाटक) तथा सती-सारंधा (काव्य) आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त आपने और भी कई नाटक लिखे हैं, जो अब तक अप्रकाशित हैं। लगभग २२ वर्ष से आपकी कविताएँ उच्चकोटि के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं। आप एक सुकवि और नाटककार, बड़े सहृदय और मिलनसार हैं।

श्रीमान् ठाकुर गोपालशरण सिंह

जन्म पौष शुक्ल प्रतिपदा संवत् १९४८। संस्कृत में कुछ योग्यता प्राप्त करने के बाद आपने अँगरेजी की पढ़ाई प्रारम्भ की और १९१० में

मैट्रीकुलेशन परीक्षा पास की। आप रीवाँ-राज्यांतर्गत प्रथम कक्षा के सुप्रतिष्ठित इलाक़ेदारों में हैं। नईगढ़ी का इलाक़ा बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित है, उसी के आप स्वामी हैं। अपनी सहृदयता, पर-दुख-कातरता तथा उच्च विचारों के कारण प्रजा को बहुत सुखी रखते हैं। बाल्यकाल से ही आपको कविता से प्रेम है। संवत् १९८२ में आप अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन (जो वृन्दावन में हुआ था) के सभापति हुए थे। आप एक लब्ध-प्रतिष्ठ कवि, विद्या-व्यसनी, उदार-चरित और सहृदय हैं। सन् १९१२ से इनकी खड़ीबोली की कविताएँ हिन्दी पत्रों में प्रकाशित हो रही हैं।

पंडित बद्रीनाथ भट्ट, बी० ए०

आप आगरा-निवासी पंडित रामेश्वर भट्ट के पुत्र थे। बी० ए० पास करने के बाद से आप पूर्णतः हिन्दी-सेवा के क्षेत्र में ही रहे। आपने चन्द्रगुप्त, तुलसीदास, बेन-चरित, दुर्गावती, चुंगी की उम्मेदवारी, विवाह-विज्ञापन, लबड़धोंधों तथा मिस अमेरिकन आदि कई नाटक तथा प्रहसन लिखे हैं। आप बड़े विनोदी थे। कुछ समय तक आप 'बाल-सखा' के सम्पादक थे, तदनन्तर लखनऊ-यूनिवर्सिटी में हिन्दी-लेक्चरर रहे। आपने 'हिन्दी' नामक एक छोटी किन्तु महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। आप एक ऊँचे दरजे के प्रतिभाशाली कवि तथा नाटककार थे। इस वर्ष आपके निधन हो जाने से हिन्दी को बड़ी क्षति पहुँची।

पंडित गोकुलचन्द्र शर्म्मा, एम० ए०

जन्म वैशाख शुक्ल १० सम्वत् १९४९ विक्रमी, जन्म-भूमि हरीनगरा (अलीगढ़) वर्तमान निवास-स्थान अलीगढ़। आप बड़े अच्छे कवि तथा लेखक हैं। आपने अपने 'परन्तप' नाम से बड़ी सुन्दर रचनाएँ

लिखी है। आपकी अनेक कविता पुस्तकों में 'तपस्वी तिलक' एक उत्कृष्ट काव्य माना जाता है। रचना विषय पर आपने 'निबन्धादर्श' एक बड़ी अच्छी मौलिक पुस्तक लिखी है। आप बड़े सहृदय और मिलनसार हैं। आजकल आप अलीगढ़ के एक हाईस्कूल में अध्यापक हैं। लगभग २२ वर्ष से आप हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

पंडित हरिशंकर शर्म्मा 'कविरत्न'

जन्मतिथि भाद्र कृष्ण ८ संवत् १९४८ विक्रमी, जन्मस्थान हरदुआ-गंज, जिला अलीगढ़। आप खड़ीबोली के कवि-श्रेष्ट पंडित नाथूराम 'शंकर' शर्म्मा के सुपुत्र हैं और अनेक वर्षों तक "आर्यमित्र" के सम्पादक रह चुके हैं। आप एक ऊँचे दरजे के कवि और लेखक हैं। आपके सम्पादकत्व में "आर्यमित्र" ने अच्छी उन्नति की। आपने वृन्दावन कवि-सम्मेलन में स्वागताध्यक्ष की हैसियत से बड़ा सारगर्भित भाषण दिया था। आप बड़े सहृदय, सरल और साहित्य-रसिक हैं।

पंडित कृष्णबिहारी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्-बी०

आप गँधौली, पोस्ट सिंधौली, जिला सीतापुर के निवासी हैं। आप एक ऊँचे दरजे के समालोचक, लेखक और कवि हैं। आपका लिखा हुआ 'देव और बिहारी' नामक तुलनात्मक समालोचना ग्रंथ बहुत सम्मान पा चुका है। 'मतिराम ग्रंथावली' का सम्पादन भी आपने बड़ी योग्यता के साथ किया है। इसके अतिरिक्त आपने और भी अनेक पुस्तकों का सम्पादन किया है। आप लखनऊ से 'समालोचक' नाम का एक पत्र भी निकालते रहे हैं। व्रजभाषा साहित्य पर आपका बड़ा गम्भीर अध्ययन है। मिश्रजी बड़े ही सहृदय, मिलनसार, मिष्टभाषी और साहित्यानुरागी हैं। इस समय आपकी अवस्था ४२ वर्ष के लगभग होगी। कई वर्षों तक आप "माधुरी" का भी सम्पादन कर चुके हैं।

श्रीयुत गुरुभक्तसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

जन्म भादों कृष्ण २ संवत् १६५० विक्रमी, जन्मस्थान जमानिया जिला गाज़ीपुर। आपका उपनाम 'भक्त' है। बड़ी मनोहर कविता लिखते हैं। आपकी कुसुम-कुञ्ज, सरस सुमन और चपला आदि कई कविता-पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आप एक प्रतिभाशाली कवि हैं। आपने इस वर्ष "नूरजहाँ" नामक एक बहुत सुन्दर काव्य लिखा है।

श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०

रायपुर (मध्यप्रदेश) में खैरागढ़ एक रियासत है। आप वहीं के निवासी हैं। आपका बख़्शी (कायस्थ) वंश बड़ा प्रतिष्ठित माना जाता है। बख़्शीजी श्रेष्ठ कहानी-लेखक, कवि तथा समालोचक हैं। इनके प्रायश्चित्त, हिन्दी-साहित्य-विमर्श, विश्व-साहित्य तथा पंचपात्र नामक ग्रन्थों ने हिन्दी-जगत् में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। कई वर्ष तक आप 'सरस्वती' का सम्पादन बड़ी योग्यता के साथ कर चुके हैं। आप जैसे उच्चकोटि के विद्वान लेखक हिन्दी में इने-गिने हैं।

पंडित मुकुटधर पांडेय

जन्म आश्विन मास सम्वत् १६५२ बालपुर जिला बिलासपुर में हुआ। प्रयाग-विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पासकर कॉलेज में भरती हुए, पर स्वास्थ्य ठीक न रहने से पढ़ना छोड़ना पड़ा। आप अपने बड़े भाई पंडित लोचनप्रसादजी के साहित्यिक जीवन से प्रभावित होकर लड़कपन से ही पद्य-रचना करने लगे थे। गद्य भी अच्छा लिखते हैं। आप बँगला भाषा से कई पुस्तकें अनुवादित कर चुके हैं। आप चित्र और संगीत के प्रेमी, प्रकृति के उपासक तथा प्रतिभाशाली कवि हैं।

बाबू सियारामशरण गुप्त

जन्म भाद्रपद १५ संवत् १९५२, निवास-स्थान चिरगाँव, झाँसी। आप हिन्दी के एक प्रतिभाशाली कवि हैं। आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आप कविवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त के अनुज हैं। आप छोटी-छोटी कहानियाँ भी सुन्दर लिखते हैं।

श्री वियोगीहरि

जन्म चैत्र शुक्ल रामनवमी संवत् १९५३ विक्रमी। १९१५ ई० में मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की। छत्रपुर नरेश के प्राइवेट-सेक्रेटरी श्रीगुलाबरायजी एम० ए० के साथ दर्शन-शास्त्र का विशेष अध्ययन किया। आप अभी तक अविवाहित हैं। आपकी व्रज-माधुरीसार, श्री छद्म-योगिनी नाटिका, साहित्य-विहार, अनुराग-वाटिका, अन्तर्नाद तथा ठंढे-छींटे, आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आपने और भी कई पुस्तकों का सम्पादन किया है। आप बड़े भावुक हैं। व्रजभाषा के कवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। अभी आपसे हिन्दी को बहुत आशाएँ हैं। आपको "वीरसतसई" काव्य पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से १२००) का जो मंगलाप्रसाद-पारितोषिक मिला था, उसे आपने फिर सम्मेलन को प्रकाशन कार्य के लिए दान दे दिया।

पंडित देवीदत्त शुक्ल

जन्म संवत् १९४५ विक्रमी; ये बक्सरक्षेत्र (बैसवाड़ा) जिला उन्नाव के निवासी, आजकल 'सरस्वती' के सम्पादक हैं। ये 'किङ्कर' नाम से कविता लिखते हैं और हिन्दी के एक अच्छे लेखक हैं। बड़े सीधे-सादे, उत्साही, मिलनसार और हिन्दी के पूर्ण पण्डित हैं।

लगभग बीस वर्ष से "सरस्वती" की सेवा कर रहे हैं। भाषासंशोधन के कार्य में इनकी क्षमता बहुत बढ़ी-चढ़ी हुई है। इनकी रचनाओं में जादूगरनी, बालकविता-माला तथा स्वाधीनता के पुजारी मौलिक और कालरात्रि, मध्यप्रदेश का इतिहास तथा आर्यों का मूलस्थान अनुवादित एवं आधारित हैं।

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

इनका जन्म माघ सुदी ११ संवत् १६५५ में महिषादल स्टेट में हुआ। कविता की ओर आपकी बचपन से ही रुचि है। मैट्रिकुलेशन में पहुँच-कर दर्शन की ओर भी झुकाव हुआ। दो वर्ष तक 'समन्वय' के सम्पादक रहना उसी का फल था। आपको संस्कृत और बँगला का अच्छा ज्ञान है। संगीत की शिक्षा आपको महिषादल-दरबार में मिली। आप अपनी शैली के निराले कवि और हिन्दी-साहित्य में नवीन युग उपस्थित करनेवालों में से हैं। आप कवि ही नहीं, उच्च कोटि के उपन्यासकार तथा कहानी-लेखक भी हैं। काव्य-शास्त्र के आप उद्भट विद्वान हैं। आपकी लिखी अनामिका (काव्य), अप्सरा तथा अलका (उपन्यास) तथा लिली (कहानी-संग्रह) पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

जन्म ता० २४ मई, सन् १६०० ई०। जन्म-स्थान कौसानी ज़िला अल्मोड़ा। सन् १६२० में सेकण्ड-इयर से पढ़ना छोड़ा। हिन्दी, अङ्गरेज़ी के अतिरिक्त संस्कृत और बँगला का भी अच्छा ज्ञान है। सरस हृदय और मधुरभाषी हैं। हिन्दी-कविता में नये युग के प्रवर्तकों में इनकी प्रथम गणना की जाती है। १६१५ में 'हार' नामक उपन्यास लिखा। १६२१ में 'उच्छ्वास' प्रकाशित हुआ, १६२६ में 'पल्लव'। तदनन्तर 'वीणा', 'ग्रन्थि' और 'गुञ्जन' काव्य तथा 'ज्योत्स्ना' नाटक प्रकाशित हुए। इनकी गणना हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में है।

श्री ललितकुमारसिंह "नटवर"

जन्म-स्थान मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार), जन्म-दिवस ज्येष्ठ कृष्ण ३० संवत् १९५५ विक्रमी। आप हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान के सच्चे अनुरागी हैं। भगवान कृष्ण के तो ऐसे भक्त हैं कि आपने मुसलिम जाति त्यागकर हिन्दुत्व स्वीकारकर अपना नाम "नटवर" रक्खा है। आपकी कविताओं में यह अनुराग स्पष्ट रूप से झलकता है। आप बड़े सरल, साहित्य-रसिक और भावुक कवि हैं। आपके लिखे कई नाटक तथा कविता-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं।

पाँडेय बेचन शर्म्मा "उग्र"

इनका जन्म-स्थान जिला मिर्ज़ापुर में, भागीरथी और जरगो नामक दो नदियों के दोआबे के बीच में बिन्ध्य-पर्वत-माला की लड़ियों से सटा "चुनार" नामक एक छोटा-सा ऐतिहासिक क़स्बा है। ये एक प्रतिभाशाली लेखक, कवि, कहानी-लेखक, नाटककार और समालोचक हैं। ये अधिक लिखते हैं और अच्छा लिखते हैं। इन्होंने "महात्मा ईसा" नामक एक बहुत सुन्दर नाटक लिखा है। इनके लिखे उपन्यासों तथा कहानी-संग्रहों की संख्या दस से ऊपर है। एकाङ्की नाटक भी इन्होंने अनेक लिखे हैं। इनकी भाषा-शैली इनकी अमर विशेषता है। ये बड़े विनोद-प्रिय, साहित्य-रसिक और मस्तजीव हैं। इनकी अवस्था इस समय ३५ वर्ष के लगभग है। आजकल ये शान्ता-कुज बम्बई में रहते और सवाक् चित्रपट-संस्थाओं के लिए कथाएँ तथा प्रहसन लिखने का कार्य करते हैं।

पंडित बालकृष्ण शर्म्मा "नवीन"

जन्म-संवत् लगभग १९५६ वि०, जन्म-स्थान उज्जैन। आप बड़े ही भावुक कवि, कहानी-लेखक और श्रेष्ठ पत्रकार हैं। कई वर्ष तक

आप 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के सम्पादक रह चुके हैं। कवित्त्वपूर्ण गद्य-लेख लिखने में आप बड़े पटु हैं। आप अच्छे वक्ता भी हैं। आपके हृदय में राष्ट्र-सेवा का अदम्य अनुराग है। आपकी कुछ रचनाओं में राष्ट्रीय जागरण के बड़े ओजस्वी भाव हैं। यद्यपि राजनीतिक सेवाओं में लगे रहने के कारण इनका साहित्यिक-जीवन कुछ दब-सा गया है, तथापि इन्होंने कुछ ऐसी कविताएँ लिखी हैं, जो हिन्दी-भाषा की स्थायी निधि मानी जायँगी। आजकल आप प्रताप-ट्रस्ट के मन्त्री हैं।

श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल 'लली'

जन्म संवत् १९५३, निवास-स्थान लखनऊ। आप प्रयाग के पंडित कन्हैयालाल तिवारी की पुत्री और रायबरेली-निवासी पंडित कैलाशनाथजी शुक्ल, बी० ए०, एल-एल्० बी० की धर्मपत्नी हैं। लगभग २२ वर्ष से ये हिन्दी-पत्रिकाओं में कविताएँ लिखती आ रही हैं। हिन्दी कवियित्रियों में इनको बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। इनके पुत्र पंडित हरिहरनाथजी शुक्ल "सरोज" भी अच्छे कवि हैं।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

जन्म श्रावण शुक्ल ५ संवत् १९६१ को प्रयाग में हुआ। यहाँ के क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। सम्वत १९७६ में इनका विवाह खँडवानिवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान, बी० ए०, एल्-एल्० बी० के साथ हुआ। कलकत्ते की कांग्रेस में असहयोग का प्रस्ताव पास होने पर इन्होंने स्कूल छोड़ दिया। इनका स्थान हिन्दी की वर्तमान स्त्री-कवियों में सबसे ऊँचा माना है। ये हिन्दी की श्रेष्ठ कवियित्री हैं। "मुकुल" नामक कविता-संग्रह और 'बिखरे मोती' नामक कहानी-

संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनको 'मुकुल' काव्य पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से ५००) का सेकसरिया-पारितोषिक मिल चुका है। इनकी कविता में राष्ट्रवेदना के बड़े ही करुण तथा ज्वलन्त भाव पाये जाते हैं।

पंडित गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०

इनकी अवस्था ३५ वर्ष के लगभग है। ये पहले 'मनोरमा' तथा 'बालसखा' के सम्पादक थे। अब दारागञ्ज (प्रयाग) में रहते हैं। इन्होंने कई सुन्दर उपन्यास, काव्य तथा समालोचना-ग्रन्थ लिखे हैं। आजकल ये "प्रेम-पत्र" नामक सुन्दर समालोचना-प्रधान मासिकपत्र निकालते और शुद्ध साहित्यिक जीवन लाभ करते हैं। 'गिरीश' जी प्रकृति के बड़े गम्भीर, सरल तथा सहृदय हैं। इनकी कविता मनोहर होती है और लेख गम्भीर और मननशील। हिन्दी को इनसे बहुत आशाएँ हैं।

पंडित ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

जन्म संवत १९६१ विक्रमी के लगभग, जन्म-स्थान सिंहगढ़, ज़िला इलाहाबाद। आजकल प्रयाग में ही रहते हैं। स्त्री-कवियों पर आपने एक वृहत ग्रन्थ लिखा है। आप बड़े मिलनसार, विनोद-प्रिय और साहित्य-रसिक हैं। आपके सम्पादकत्व में "मनोरमा" तथा "भारतेन्दु" ने अच्छी उन्नति की थी। दैनिक "भारत" के सम्पादकीय विभाग में काम करते हुए आपने हिन्दी की अच्छी सेवा की। आप बड़ी सुन्दर कविता लिखते हैं।

श्रीयुत आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

जन्म वैशाख कृष्ण ३ सम्वत् १९५६ वि, निवास-स्थान फ़तेहपुर, कार्य-स्थान तहसील सोरांव, ज़िला इलाहाबाद। ये 'श्रीशारदा' तथा

'सरस्वती' के सम्पादकीय विभागों में कार्य कर चुके हैं और आजकल प्रयाग के कायस्थ-पाठशाला इण्टरमीजिएट कॉलेज में हिन्दी के अध्यापक हैं। ये एक प्रतिभाशाली कवि हैं। मासिक-पत्रों में इनकी बहुत सुन्दर रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। इनकी कई कविता-पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। ये कहानीकार भी हैं और बच्चों के साहित्य के भी निर्माता हैं।

पंडित राजाराम शुक्ल

जन्म कार्तिक कृष्ण १५ संवत् १९५७ विक्रमी जन्म-स्थान परसूपुरवा, ज़िला फ़र्रुख़ाबाद। ये डी० ए० वी० हाई स्कूल कानपुर में हिन्दी के अध्यापक हैं। इनकी लिखी हुई 'मुक्ति की युक्ति' तथा 'विधवा' ये पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन्होंने और भी कुछ कविता-पुस्तकें लिखी हैं। इन्होंने आँखों पर ११११ बहुत भावपूर्ण दोहे लिखे हैं। ये बड़े स्पष्टभाषी साहित्य-रसिक हैं। इनकी राष्ट्रीय कविताएँ 'एक राष्ट्रीय आत्मा' के नाम से निकलती हैं।

बाबू भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०

जन्म संवत् १९६० वि०, जन्म-भूमि शफ़ीपुर (उन्नाव) निवास-स्थान कुरसवाँ, कानपुर। ये बहुत छोटी अवस्था से ही कविता लिखने लगे थे। इनकी कविता में मानव-सृष्टि का अन्तर्द्वन्द्व और वहिर्द्वन्द्व दोनों रहता है। ये बड़े भावुक कवि हैं। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में इनके सम्बन्ध में हमने लिखा था कि आगे चलकर ये हिन्दी के बड़े ऊँचे दरजे के कवि और लेखक होंगे। आज दस वर्ष बाद हम अपनी यह बात प्रत्यक्ष रूप में पा रहे हैं। इनकी कविताएँ बहुत ही मर्मभेदिनी, कहानियाँ व्यङ्ग और चोट से तड़फड़ाती हुई और उपन्यास चरित्र-प्रधान होते हैं। इनके मधुकण (काव्य), पतन

और चित्रलेखा नामक दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी को इनसे बहुत आशाएँ हैं।

श्रीमती महादेवी वर्म्मा एम० ए०

इनका जन्म संवत् १९६४ में बाबू गोविन्दप्रसाद एम० ए०, एल्-एल्० बी० फ़र्रुखाबाद-निवासी के यहाँ हुआ। ग्यारह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया था। आजकल ये प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की मुख्याध्यापिका हैं। 'नीहार' और 'रश्मि' नामक इनके दो कविता-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। ये बड़ी मनोहर और भावमयी कविता लिखती हैं। इनकी कविता में वेदना का बड़ा ही मधुर और मोहक सङ्गीत रहता है। हिन्दी कवियित्रियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है। इस वर्ष इनका "नीरजा" नामक एक और काव्य प्रकाशित हुआ है।

पंडित अनूप शर्म्मा बी० ए०, एल्-टी०

जन्म भाद्र कृष्ण ३० सम्वत् १९५६ विक्रमी, जन्मस्थान नवीनगर (सीतापुर)। आजकल ये लखीमपुर हाई स्कूल में हेडमास्टर हैं। खड़ी बोली में वीर-रस की कविता लिखने में ये इतने कुशल हैं कि 'वर्तमान-भूषण' कहलाते हैं। अनेक कवि-सम्मेलनों में इनकी वीररस की कविताएँ बहुत पसन्द की जा चुकी हैं। इनका कविता पढ़ने का ढङ्ग भी वीरतापूर्ण तथा चित्ताकर्षक है।

श्रीयुत मोहनलाल महतो गयावाल

जन्म सम्वत् १९५९ विक्रमी तथा जन्म-भूमि ऊपरडीह, गया है। इनकी कविता में मानव-जीवन के अन्तर्द्वन्दों का चित्रण रहता है और

चित्र में मनोभावों से प्रभावान्वित उनकी आकृतियों का। सौभाग्य से वियोगीजी को ये दोनों ही कलाएँ प्राप्त हैं। आप बड़े गम्भीर और मिष्ट-भाषी हैं। आपका गद्य भी बड़ा कवित्व पूर्ण होता है। आपकी लिखी हुई 'निर्माल्य', 'रेखा' आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

पंडित जगदम्बाप्रसाद मिश्र "हितैषी"

जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल १० सम्वत् १९५४ विक्रमी, निवास-स्थान कानपुर। पिछले पन्द्रह वर्षों में उत्थित होनेवाले कवियों में इनका एक प्रमुख-स्थान है। राजनैतिक जीवन में इन्होंने बहुत कष्ट सहन किये हैं। चार-पाँच बार ये जेल जा चुके हैं। ये शृङ्गार, करुण और हास्य—इन तीनों रसों में अधिकारपूर्वक कविता लिखते हैं। स्वर्गीय पंडित प्रतापनारायण मिश्र के हँसोड़पन का इनके दैनिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इनका अधिकांश समय साहित्यिक चर्चा अथवा सार्वजनिक सेवा में ही व्यतीत होता है।

श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह

ये इलाहाबाद जिले के अन्तर्गत मानपुर तहसील बारा के निवासी हैं, आजकल इलाहाबाद में रहते हैं और इस समय "सरस्वती" के सम्पादक हैं। 'बाल-सखा' का सम्पादन भी कई वर्षों से कर रहे हैं। इससे पहले ये 'शिशु' और 'गृहलक्ष्मी' के सम्पादकीय-विभाग में कार्य करते थे। ये स्वभाव के बहुत निष्कपट और निर्भीक व्यक्ति हैं। बाल-साहित्य के सृजन में इन्होंने बहुत लगन के साथ कार्य किया है। इनकी कविताएँ बच्चों से लेकर वृद्धों तक को मोददायिनी होती हैं। कविता, कहानी और उपन्यास—इन तीनों दिशाओं में इनकी प्रगति है इन्होंने 'प्रेम-परीक्षा', 'आविष्कारों की कथा', 'पृथ्वी की कहानी', 'बाल-

कवितावली', 'यौवन, सौन्दर्य और प्रेम', 'जीवन के चित्र', 'परीलोक की सैर' तथा 'उलझन' (उपन्यास) आदि अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इनकी भावनाएँ और विचार-धाराएँ इस युग का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की अधिकारिणी हैं।

श्रीरामनाथलाल "सुमन"

ये काशी-निवासी हैं, अवस्था ३३ वर्ष के लगभग है। "त्यागभूमि" के सम्पादकीय विभाग में इनकी पत्रकार-कला का अच्छा परिचय हिन्दी-जगत् को मिल चुका है। इनकी लिखी हुई "भाई के पत्र" तथा "हमारे राष्ट्र-निर्माता" आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। ये कविता भी भावमयी लिखते हैं। ये इस काल के हिन्दी-लेखकों में आदरणीय स्थान रखते हैं।

श्रीमान् दुलारेलाल भार्गव

ये लखनऊ के सम्मान्य स्वर्गीय श्रीमान् नवलकिशोर भार्गव के वंशज, "सुधा" मासिक-पत्रिका, गङ्गा-ग्रन्थागार तथा गङ्गा-फ़ाइन-आर्ट-प्रेस के एकमात्र स्वत्त्वाधिकारी हैं। इनकी अवस्था इस समय ३२ वर्ष के लगभग है। हिन्दी की मासिक-पत्र-पत्रिकाओं के इतिहास में "माधुरी" के साथ-साथ इनका नाम भी, उसके सुचारु सम्पादन के कारण, अक्षय रहेगा। इस काल के व्रजभाषा के कुशल कवियों में निर्विवाद रूप से इनका आदरणीय स्थान माना जाता है। इन्होंने कई सौ दोहे लिख कर वास्तव में उच्चकोटि की कविप्रतिभा का परिचय दिया है।

श्रीयुत रामकुमार वर्म्मा, एम० ए०

ये नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश के निवासी आजकल इलाहाबाद में रहते

है और प्रयाग-विश्वविद्यालय में हिन्दी-अध्यापक हैं। इनकी स्वर्गीया माता पूजनीया राजरानी देवी भी सुप्रसिद्ध कवयित्री थीं। जान पड़ता है, वर्म्माजी ने पूजनीया मातेश्वरी से ही ऐसा ऊँचा और सजग कवि-हृदय पाया है कि ज्योंही हाईस्कूल की शिक्षा समाप्त कर पाये, त्योंही हिन्दी-जगत् के समक्ष कवि के रूप में उपस्थित हो गये। इनकी लिखी हुई 'अभिशाप', 'चित्तौड़ की चिता' तथा 'रूप-राशि' आदि कई कविता-पुस्तकें तथा 'साहित्य-समालोचना' एवं 'कबीर का रहस्यवाद' समालोचना-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। सन् १९२५ ई० के पश्चात् उत्थित होनेवाले कवियों में वर्म्माजी एक विशेष स्थान रखते हैं। इन्होंने कुछ एकांकी नाटक भी लिखे हैं। इस समय इनकी अवस्था ३० वर्ष के लगभग है।

पंडित रामशंकर शुक्ल "रसाल" एम० ए०

ये गजनेर जिला कानपुर के निवासी आजकल इलाहाबाद में रहते हैं। ये इस काल के ब्रजभाषा के सुकवियों में आदरणीय स्थान रखते हैं। इन्होंने कई काव्य-ग्रन्थों का सम्पादन किया है। हिन्दी-काव्य की आलोचना में भी इनकी अच्छी गति है। ये हिन्दी-काव्य के जैसे पंडित हैं, इनकी कविता भी वैसी ही मनोहर होती है। इनकी अवस्था इस समय ३२ वर्ष के लगभग है।

पंडित गोविन्दवल्लभ पंत

जन्म सन् १८९९, जन्म-भूमि अलमोड़ा। ये पहले ए० बी० मिशन स्कूल रानीखेत में असिस्टेंट टीचर थे। कुछ काल तक 'सुधा' के सम्पादकीय विभाग में भी कार्य कर चुके हैं। इन्होंने कई नाटक, कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। अभिनय-कला का भी इन्हें अच्छा अनुभव है। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास — सर्वत्र इनकी प्रगति है।

पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र बी० ए०

ये बस्ती, पोस्ट रामपुरडीह, ज़िला आज़मगढ़ के निवासी हैं। इनकी अवस्था इस समय ३३ वर्ष के लगभग है। इन्होंने 'अन्तर्जगत्' नामक एक छोटा काव्य और कई नाटक लिखे हैं। इनके नाटकों का हिन्दी-जगत में अच्छा स्वागत हो रहा है। एक सफल नाटककार के पूर्ण लक्षण इनकी कृतियों में पाये जाते हैं।

पंडित जनार्दनप्रसाद झा "द्विज" एम० ए०

जन्म २४ जनवरी १६०४ ईसवी तथा निवास-स्थान रामपुरडीह पोस्ट शाहकुण्ड ज़िला भागलपुर है। ये हिन्दी के सुपरिचित कहानीकार और सुकवि हैं। दुःखान्त कहानी लिखने में इनकी कहानी-कला का प्रतिविम्ब अधिक झलकता है। मीरा की काव्यकला, प्रेमचन्द्र की उपन्यास कला, मालिका (कहानी-संग्रह) के अतिरिक्त इनका एक कविता-संकलन भी प्रकाशित हो चुका है।

श्रीजगन्नाथप्रसाद "मिलिन्द"

ये मुरार (गवालियर) के निवासी हैं। लाहौर में जो "भारती" मासिक-पत्रिका प्रकाशित हुई थी, ये उसके सम्पादक थे। इन्होंने कई नाटक लिखे हैं। इनकी कविताएँ सुन्दर होती हैं। ये बहुत गम्भीर प्रकृति के पुरुष हैं। "भारती" के सम्पादन में इन्होंने अच्छी सफलता पायी थी। इनकी अवस्था ३२ वर्ष के लगभग है।

श्रीमती रामेश्वरीदेवी मिश्र "चकोरी"

जन्म-स्थान बेत्थर (उन्नाव), इस समय लखनऊ में रहती हैं। दो वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया था।

इस कारण ननिहाल (नरही, लखनऊ) में इनका लालन-पालन हुआ। इनके पति श्रीयुत लक्ष्मीशङ्करजी मिश्र बी० ए० "अरुण" भी सुकवि हैं। चकोरीजी ने इधर थोड़े ही दिनों में अनेक मनोहारिणी कविताओं की रचना में जो प्रतिभा प्रदर्शित की है, वह सर्वतोभावेन सराहनीय है। "किंजल्क" नामक इनका एक कविता-संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। इनसे हिन्दी को बहुत आशाएँ हैं। इनका वय अभी बीस ही वर्ष के लगभग है।

पंडित सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०

ये बिंदकी जिला फ़तेहपुर के निवासी हैं और इस समय काशी में रहते हैं। इनकी रचनाएँ सुन्दर होती है। बच्चों के लिए भी इन्होंने बहुत सी कविताएँ लिखी हैं। स्वभाव के ये बड़े मिलनसार और मिष्टभाषी हैं। इनकी अवस्था इस समय २८ वर्ष के लगभग है।

श्रीयुत शम्भूदयाल सकसेना, साहित्य-रत्न

ये फ़र्रुखाबाद के निवासी आजकल सेठिया कॉलेज बीकानेर में हिन्दी के अध्यापक हैं। कहानी, उपन्यास और कविता—तीनों दिशाओं में ये प्रगतिशील रहते हैं। स्वभाव के बहुत निष्कपट, गम्भीर और मिलनसार हैं। बड़े भावुक कवि हैं। "बहूरानी" उपन्यास, "चित्रपट" और "बन्दनवार" नामक कहानी-संग्रह तथा "अमरलता", "उत्सर्ग" और "भिखारिन" आदि कई काव्य प्रकाशित हो चुके हैं।

पंडित उमाशंकर वाजपेयी, एम० ए० "उमेश"

ये लखनऊ में निवास करते हैं। साहित्य-कला के सम्बन्ध में इनकी विचार-धाराएँ प्रौढ़ और परिमार्जित हैं। इनका व्रजभाषा-

काव्य का अध्ययन बहुत गहन है। ये स्वभाव के बहुत मिलनसार, मृदुभाषी और गम्भीर हैं। ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में इनकी कविता बहुत सुन्दर होती हैं।

श्रीरामेश्वर शुक्ल "अञ्चल"

ये बीघापुर (उन्नाव) के निवासी "माधुरी"-सम्पादक पंडित मातादीनजी शुक्ल के सुपुत्र हैं। आजकल लखनऊ-विश्वविद्यालय में पढ़ते हैं। ये सुकवि ही नहीं, कहानीकार भी हैं। इनकी भाषा बड़ी मृदुल और मर्मस्पर्शिनी होती है। साहित्यालोचन में भी इनकी अच्छी गति है। अभी इनका वय बाइस वर्ष के लगभग ही है, और इनका रचना-कार्य भी अभी दो-तीन बर्षों से ही हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में दृष्टिगत हुआ है, तथापि इनकी इन थोड़ी-सी रचनाओं ने ही जो ख्याति प्राप्त की है, वह इनके समुज्ज्वल भविष्य का अच्छा परिचय देती है। ये एक प्रतिभाशाली कवि तथा लेखक हैं।

श्रीनरेन्द्र शर्म्मा, बी० ए०

जन्म फ़रवरी २७ सन् १९१३ ई०। निवास-स्थान जहाँगीरपुर, ज़िला बुलन्दशहर। यद्यपि अभी दो वर्षों से ही इन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ किया है; तथापि इतने समय में ही इनकी लिखी कविताओं ने हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में जो सम्मान प्राप्त किया है, वह इनके उज्ज्वल भविष्य का परिचय देने के लिए यथेष्ट है। इस वर्ष इनकी कविताओं का एक संकलन "शूल-फूल" नाम से प्रकाशित हुआ है। बड़े मृदुभाषी, सरल हृदय और प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं

श्रीचन्द्रभानुसिंह

ये रतसँड़ ज़िला बलिया के निवासी सुकवि, एक प्रतिष्ठित ज़मींदार

ौर रईस हैं। इनकी अवस्था ३५ वर्ष की है। इनकी लिखी 'दीपावली', कुसुमावली' तथा चंद्रिका आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्रीरामसिंहासनसहाय "मधुर"

आप सागरपाली जिला बलिया के निवासी, बलिया में मुख्तार हैं। ापकी अवस्था इस समय ३२ वर्ष के लगभग है। बाल्यावस्था से ही ये विता लिखने लगे थे। "कर्मवीर" में इनकी कविताएँ प्रायः प्रकाशित ाती रहती हैं। आपकी कविताओं का संग्रह "मधुर-लहरी" नाम से प्रकाशित हो चुका है। आप एक होनहार कवि हैं।

पंडित युगुलकिशोर मिश्र "युगुलेश"

ये प्रतापगढ़ में अध्यापक हैं। व्रजभाषा में अच्छी कविता लिखते ं। इनकी कविताओं का एक संकलन "श्रद्धाञ्जलि" नाम से निकल चुका ै। इनकी अवस्था इस समय ३४ वर्ष के लगभग है।

विषय-सूची

ऋतु-वर्णन

प्रकृति-छटा

विश्व-छवि

उद्‌गार

उपदेशामृत

स्वदेश-प्रेम आदि

कविता | लेखक | पृष्ठ

गुञ्जन

———

नवीन पद्य-संग्रह

ईश्वर-प्रार्थना आदि

प्रबोधिनी

जागो मंगलरूप, सकल व्रजजन-रखवारे।
जागो नंदानंद-करन, जसुदा के वारे॥
जागो बलदेवानुज, रोहिनिमातु-दुलारे।
जागो श्रीराधाजू के प्रानन ते प्यारे॥

ागो कीरति-लोचन-सुखद, भान-मान-वर्द्धितकरन।
ागो गोपी-गोप-प्रिय, भक्त-सुखद असरन-सरन॥

होन चहत अब प्रात, चक्रवाकिन सुख पायो।
उड़े विहँग तजि बास चिरैयन रोर मचायो॥
नव मुकुलित उत्पल पराग लै शीत सुहायो।
मन्थर गति अति पौन करत पंडुर बन धायो॥

लिका उपवन विकसन लगी, भँवर चले संचार करि।
रब पच्छिम दिसन महँ, अरुन तरुन कृत तेजधरि॥

दीप-जोति भइ मन्द, पहरुगन लगे जँभावन।
भई सँजोगिन दुखी, कुमुद मुद मुँदे सुहावन॥
कुम्हिलाने कच कुसुम, वियोगिन लगिस चुपावन।
भई मरगजी सेज, लगे सब भैरव गावन॥

तन अभरन जन सीरे भये, काजर दृग विकसित ॥जत।
अधरन रस, लाली साथ मुख, पान स्वाद चाहन ।जत॥

मथे सदन नवनीत लिये रोटी घृतबो ।
तनिक सलोनो साक दूध की भरी कटोरं ॥
खरी जसोदा मात जात बलि-बलि तृन तो ।
तुव मुख निरखन हेत ललक उर किये करोः ॥

रोहिनि आदिक सब पास ही, खरी बिलोकन बः न तुव।
उठि मंगलमय दरसाय मुख, मंगलमय सब करहु भुव॥

करत काज नहिं नन्द बिना तुव मुख अवरे ।
दाऊ बन नहिं जात बदन सुन्दर बिनु दे ॥
ग्वालिन दधि नहिं बेंचि सकत लालन बिनु पे ।
गोप न चारत गाय लखे बिनु सुन्दर भे ॥

भई भीर द्वार भारी, खरे सब मुख-निरखन आ । करि।
बलिहार ! जागिये देर भइ, बन-गोचारन चेत करि॥

डूबत भारत, नाथ! बेगि जागो, अब जा ो।
आलस-दव यहि दहन हेत चहुँ दिसि सो लाः ॥
महामूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरा ो।
कृपादृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्याः ॥

अपुनो अपनायो जानि के करहु कृपा गिरि रधरन।
जागो बलि बेगहि नाथ अब देहु दीन हिन्दुः सरन॥

प्रथम मान, धन, बुद्धि, कुशल बल देइ बढ़ ो।
क्रम सों विषय-बिदूषित जन करि तिनहिं घटा ो॥
आलस में पुनि फाँसि परस्पर बैर चढ़ ो।
ताही के मिस जवन कालसम को पग अ ो॥

तिनके कर की करबाल बल, बाल-बृद्ध सब नासिके।
अब सोवहु होइ अचेत तुम, दीनन के गल फाँसिके॥

कहँ गये बिक्रम, भोज, राम, बलि, कर्ण, युधिष्ठिर ?
चन्द्रगुप्त, चाणक्य कहाँ नासे करिके थिर !
कहँ छत्री सब मरे-जरे नसि गये किते गिर !
कहँ राजा को तौन साज जेहि जानत है चिर !!

कहुँ दुर्ग, सैन, धन, बल गयो, धूरहि धूर दिखात जग !
जागौ अब तौ खल-बल-दलन रक्षहु अपनो आर्यमग॥

जहाँ बिसेसर, सोमनाथ, माधव के मन्दर,
तहँ मसजिद बनि गई होत अब अल्ला-अकबर !
जहँ भूसी, उज्जैन, अवध, कन्नौज रहे बर।
तहँ अब रोवत सिवा चहूँ दिसि लखियत खँडहर॥

जहँ धन, विद्या बरसत रही सदा, अबै वाही ठहर।
बरसत सब ही विधि बेबसी अब तौ जागौ चक्रधर !

गयो राज, धन, तेज, रोष, बल, ज्ञान नसाई।
बुद्धि, वीरता, श्री, उछाह, शूरता मिटाई॥
आलस, कायरपनो, निरुद्यमता अब छाई।
रही मूढ़ता, बैर, परस्पर कलह लराई॥

सब बिधि नासी भारत-प्रजा, कहुँ न रह्यो अवलम्ब अब।
जागौ जागौ करुनायतन, फेर जागिहौ नाथ कब ?॥

सीखत कोउ न कला, उदर-भरि जीवत केवल।
पशु समान सब अन्न खात पीवत गङ्गा जल॥
धन विदेश चलि जात तऊ जिय होत न चञ्चल।
जड़ समान ह्वै रहत अकल-हत रचि न सकत कल॥

जीवत बिदेश की बस्तु लै, ता बिनु कछु नहिं करि सकत ।
जागौ जागौ अब साँवरे, सब कोउ रुख तुम्हरो तकत ॥

पृथीराज जयचन्द कलह करि जवन बुलायो ।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो ॥
अलादीन औरङ्गजेब मिलि धरम नसायो ।
विषय बासना दुसह मुहम्मदसह फैलायो ॥

तब लौं सोये नाथ तुम जागे नहिं कोऊ जतन ।
अब तौ जागौ बलि बेर भइ, हे मेरे भारत रतन !

जागौ हौं बलि गई बिलम्ब न तनिक लगावहु ।
चक्र-सुदरसन हाथ धारि रिपु मारि गिरावहु ।
थापहु थिर करि राज-छत्र सिर अटल फिरावहु ।
मूरखता दीनता कृपा करि बेग नसावहु ॥

गुन, विद्या, धन, बल, मान बहु सबै प्रजा मिलिकै लहैं ।
जय राज राज महाराजकी, आनँद सों सबही कहैं ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

दीन-निहोरा

(१)

दया दयामय नाथ सदा है अमित तुम्हारी ।
जो तुमने सुधि कभी दीन की नहीं बिसारी ॥
कौतुक जग में करे तुम्हारी करुणा नाना ।
धन, प्रभुता, बल, बुद्धि व्यर्थ है निरा बहाना ॥

(२)

जो कौड़ी को दुखी दीन रो रो तरसै है।
सहसा कञ्चन-मेह उसीके घर बरसै है!
मरणहार जो फँसा कठिन रोगों के दल में।
जीव-दान तुम नाथ उसे देते हो पल में!

(३)

खुले ठौर की कड़ी शीत में जो मरता है।
दिव्य धाम में वही वास सुख से करता है॥
आशा-हीन की आश नाथ तुमही हो जग में।
बिछ जाते हैं फूल दीन के कण्टक-मग में॥

(४)

बालक बिन, धन भरा, महल है जिसका सूना।
सातों सुख के सहज बने हैं वही नमूना॥
नहीं नेक भी सह्य कभी है कोप तुम्हारा।
संसारी बल इसे सके क्या रोक बिचारा॥

(५)

रहता है शुभ नाम तुम्हारा मुख पर दुख में।
हाय! उसे हम अधम भूल जाते हैं सुख में॥
तो भी करुणा नहीं रावरी कम होती है।
अन्तर्यामी दृष्टि जगत पर सम होती है॥

(६)

मदमाता जग, भला दीन-दुख क्या पहचाने।
दीन-बन्धु बिन कौन दीन के हिय की जाने॥

होता जो न अधार शोक में नाथ तुम्हारा।
निराधार यह जीव भटकता फिरता मारा॥

(७)

कभी कभी हैं काज तुम्हारे यदपि अनोखे।
तो भी उनसे लाभ सृष्टि पाती है चोखे॥
जन्म, मरण, दुख, हर्ष, नियम का सहकर बंधन।
करते हैं आदेश तुम्हारा निशिदिन पालन॥

—कामताप्रसाद गुरु

कन्हैया !

जब होता था ह्रास धर्म का तब तुम आते रहे कन्हैया !
आओ, अपने प्रण को पालो कब तक हम दुख सहें कन्हैया !
जो भारत तेरा लीला-स्थल सबका था सिरताज कन्हैया !
वही अधोमुख हो रोता है गड़ा लाज में आज कन्हैया !
तरस रहे हैं तनिक सुना जा फिर वंशी की तान कन्हैया !
करदे सुखद शान्ति के दाता दिव्य गीत का गान कन्हैया !
भूखों भारत तड़प रहा है ! कहाँ चखोगे खीर कन्हैया !
नग्न नारियाँ यहाँ पड़ी हैं, कहाँ हरोगे चीर कन्हैया !
दुखदायक कलिकाल हुआ है अन्य कंस के सदृश कन्हैया !
सत्वर आकर हमें उबारो आत्म-वंश के हंस कन्हैया !
चिन्ता-सर में डूब रहा है ग्राह-ग्रसित सा देश कन्हैया !
गज की भाँति इसे भी रख लो मिटे न गौरव लेश कन्हैया !

क्यों प्यारे प्रतिकूल हुए हो ? हो जाओ अनुकूल कन्हैया !
शीघ्र हटा दो हिन्द-हृदय से संतापों का शूल कन्हैया !
दैन्य-इन्द्र ने प्लेग-मेघ से किया देश का नाश कन्हैया !
प्रेमाचल तुमने न उठाया, कहाँ रचोगे रास कन्हैया !
सुख की नैया डूब रही है स्वार्थ-सिन्धु के बीच कन्हैया !
कर्णधार बन पार लगा दो उसे किसी विधि खींच कन्हैया !
सभी नाश होने के पहले सोचो अपनी भूल कन्हैया !
चूकोगे तो वृथा उड़ेगी ख़ूब तुम्हारी धूल कन्हैया !
कहाँ फँसे हो, आकर देखो देश दुखी का हाल कन्हैया !
काल-बकासुर निगल रहा है गो, गोपी, गोपाल कन्हैया !
भरी सभा में खींच रहा है हठ-दुःशासन चीर कन्हैया !
हिन्दी-द्रुपद-सुता की रखलो लाज आज तुम कुँवर कन्हैया !

—रामचरित उपाध्याय

अन्वेषण

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुञ्ज और वन में ।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में ॥
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था ।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में ॥

मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू ।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में ॥
बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू ।
मैं देखता तुझे था माशूक़ के बदन में ॥

दुख से रुला रुलाकर तूने मुझे चिताया।
मैं मस्त हो रहा था तब हाय अंजुमन में!

बाजे बजा-बजाकर मैं था तुझे रिझाता।
तब तू लगा हुआ था पतितों के संगठन में॥

मैं था विरक्त तुझसे जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में॥

तू बीच में खड़ा था बेबस गिरे हुओं के।
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहाँ चरन में॥

तूने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था, मैं व्यस्त था कथन में॥

हरिचंद और ध्रुव ने कुछ और ही बताया।
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप धन में॥

तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था फ़रहाद कोहकन में॥

क्रीसस की हाय में था करता विनोद तूही।
तू ही बिहँस रहा था महमूद के रुदन में॥

प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना।
तूही मचल रहा था मंसूर की रहन में॥

आखिर चमक पड़ा था गांधी की हड्डियों में।
मैं तो समझ रहा था सुहराबपील-तन में॥

कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस क़दर है।
हैरान होके भगवन आया हूँ मैं सरन में॥

तू रूप है किरन में, सौन्दर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में॥

तू ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुसलिमों में ।
विश्वास क्रिश्चियन में तू सत्य है सुजन में ॥
हे दीनबन्धु ! ऐसी प्रतिभा प्रदान कर तू ।
देखूँ तुझे दृगों में, मन में तथा वचन में ॥
कठिनाइयों, दुखों का इतिहास ही सुयश है ।
मुझको समर्थ कर तू बस कष्ट के सहन में ॥
दुख में न हार मानूँ, सुख में तुझे न भूलूँ ।
ऐसा प्रभाव भर दे, मेरे अधीर मन में ॥

—रामनरेश त्रिपाठी

भिक्षुक का दान

यह कैसी विचित्र लीला है, यह कैसा व्यवहार !
तुम्हें लोक-मर्यादा का है कुछ भी नहीं विचार !
मुझे जान पड़ता है तुम तो करते हो उपहास ।
प्रभो, तुम्हारा ढङ्ग देखकर विस्मित है संसार ।
मुझसे भी तुम आज माँगते हो भिक्षा का दान ।
क्या मैं तुम्हें नाथ, दे सकता कुछ भी किसी प्रकार ?
तुमसे लेकर मैं करता हूँ जीवन का निर्वाह,
तुम पर ही तो सदा दरिद्रों का रहता है भार ।
मैंने जान लिया, ऐसी है सदा तुम्हारी रीति ।
भिक्षुक से भिक्षा लेकर तुम करते हो उपहार ।
सत्य-कथा कहने से मेरे मत हो जाना रुष्ट,
कह दो तुम क्या नहीं गये थे कभी द्वार से द्वार !

तुम्हें सुदामा के तण्डुल से हुआ नहीं क्या तोष ?
सबरी के बेरों पर तुमने किया नहीं अधिकार ?
बलि से छलकर ग्रहण किया था किसने यह त्रैलोक्य ?
पुष्प-दान लेकर क्या गज का किया नहीं उद्धार !
कुछ भी हो, पर नहीं करूँगा तुमको आज निराश।
हृदय-सिंधु का रत्न तुम्हें मैं देता हूँ उपहार।
मलिन जानकर यदि लेने में इसको हो संकोच,
तो सुधि कर लेना कैसा था भृगु का पाद-प्रहार।

—पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी

समर्थन

ख़ूब किया, जो तुमने इसको ला पिंजड़े में बन्द किया !
चारा चुगने को बेचारा,
दर-दर फिरता मारा मारा !
दूध-भात बैठा खाता है, आहा ! क्या आनन्द दिया !
तरु-कोटर-वासी निरीह को, स्वर्णासन आसीन किया !
बन-बिहंग को सुजन बनाया,
बातचीत करना सिखलाया ;
राम-नाम का मज़ा चखाया, अमर किया, स्वाधीन किया !

—राय कृष्णदास

पद

कैसेहुँ जो अपबस करि पाऊँ ।
जीवन-धन, तौ तुम्हैं खोलि हिय जियकौ मरम सुनाऊँ ॥
या उर-अन्तर प्रेम-कुटी रचि पल पाँवड़े बिछाऊँ ।
भाव-सेज सजि अति मृदु, तापै नाथ ! तुम्हैं पौढ़ाऊँ ॥
तहँ पलोटि पद-पदुम तुम्हारे ललकि-ललकि बलि जाऊँ ।
लाय लाय सीतल रज नैननि जिय की जरनि सिराऊँ ॥
बूड़ि तुम्हारे स्याम-रङ्ग मधि मानस पटहिं रँगाऊँ ।
सहज पखारि पुरातन कारिख पल में धवल बनाऊँ ॥
ललित त्रिभङ्गी गति नटनागर ! उमँगि-उमँगि उर ध्याऊँ ।
कठिन कुटिल गति या चित की प्रभु कोमल सरल सधाऊँ ।
बँधि कै तुम्हरी अलक डोरि सों, हरि, भव-फंद छुड़ाऊँ ।
लहि मुसकान-माधुरी मोहन, घट नव रसनि भुलाऊँ ॥
सींचि-सींचि तुव कृपा-बारि नित करम कुखेत सुखाऊँ ।
लाल, तुम्हारे चपल चखनि बिच रमि इत-उत नहिं धाऊँ ॥
वेद-वाद ज्ञानानि वादि कै प्रेम-कथा प्रगटाऊँ ।
लैकर वीन, लीन ह्वै तुव छवि, नित नव गुन-गन गाऊँ ॥

—वियोगी हरि

जीवन-घट

[गान]

मेरे घट में जीवन भर दो !
यह जो छन-छन छीज रहा है, उसको लेकर दृढ़तर कर दो ।
मेरे घट में जीवन भर दो ॥

ज्यों-ज्यों मैंने इसे सँजोया
त्यों-त्यों अधिकाधिक है खोया
जीवनदाता, मेरा आग्रह मेरे मन से आज बिखर दो!
मेरे घट में जीवन भर दो ॥

आत्म-वञ्चना की अँधियारी
ढके हुए है प्रज्ञा सारी
मेरी गहरी मोह-निशा को प्रियतम तुम ज्योतिर्मय कर दो।
मेरे घट में जीवन भर दो ॥

बहुत भूलता भूल न पाता
जग का कैसा अद्भुत नाता
मेरे इस प्रवृत्तिमय मन को जीवनमय निवृत्तिमय कर दो।
मेरे घट में जीवन भर दो ॥

लुटा हुआ हूँ, दीन-हीन हूँ
कलुषित हूँ, मन का मलीन हूँ
धो-धोकर अपने आँसू से मेरा हृदय धवल प्रभु, कर दो।
मेरे घट में जीवन भर दो ॥

—रामनाथलाल 'सुमन'

जिज्ञासा

आज नवीन वसन्त उषा में
मेरी भग्न कुटी के द्वार,
कौन नवीन अतिथि आया है
लेकर मृदु नूपुर झंकार?

मेरी ही इस दीन दशा से—
करने को मेरा उपहास
कौन कुञ्ज में गूथ रहा है
मेरी अश्रु-राशि से हार ?

अब कोयल के स्वर से मुझको—
क्यों होता है इतना राग—
भूल गया हूँ जब मैं गाना,
टूट गये वीणा के तार ?

कैसे धैर्य धरूँ ? इस मुख में
लज्जा लट घूँघट का भार,
उधर आम में बौर, बौर में
मधु, मधु में मधुकर-गुञ्जार।

आहत स्मृति के निभृत निलय में—
है मम भग्न वासना-सप्त,
उसको छेड़ जगाने को यह
किसने किया आज शृङ्गार ?

आयेही हो तो आओ,
मैं छलसे बलसे कौशल से—
हरकर अखिल विश्व श्रीमैं इन
चरणों में दूँगा उपहार।

—गोविन्दवल्लभ पन्त

———

अनुरोध

कहाँ हो ? आओ, कुछ बोलो ।

विरह-व्यथा से व्याकुल होकर इधर-उधर चकराता।
हा-हा ! हट-हट ! की हलचल से तेरा पता न पाता ॥
भटकता फिरूँ न सूझे पंथ, तुझे मैं खोज-खोज हारा।
प्रबल पालन उन्मादों को, दबाती है दुबिधा-दारा ॥
हृदय-तुला पर मेरे इस दीवानेपन को तोलो !
कहाँ हो ? आओ, कुछ बोलो ॥

(२)

खड़ा तुम्हारे द्वार पुकारूँ विकल वेदना भारी ।
भूख लगी है मुझे प्रेम की, मैं हूँ प्रेम-भिखारी ॥
प्रेम का बन्धन बड़ा सजोर, पड़ा उलझन में भरमाता ।
सुलझने ज्योंही बढ़ता ! हाय ! उलझकर त्योंही रहजाता ॥
मेरी दर्द-भरी बातों में सत्य-असत्य टटोलो ।
कहाँ हो ! आओ, कुछ बोलो ॥

(३)

अन्तर्नाद कभी सुनता हूँ जब निशि में, वासर में ।
भव्य भावनाओं की लहरें उठती हैं हृत्-सर में ॥
हृदय-वीणा-सस्वर अनमोल, गान स्वर्गीय सुनाती है ।
प्रणय में पड़कर हो अलमस्त भूल सब सुधि-बुधि जाती है ॥
आपस के उस बीच में पड़े पर्दे को तो खोलो ।
कहाँ हो ! आओ, कुछ बोलो ॥

(४)

नहीं सुहाता भीतर-बाहर, आगे ऊँचा-नीचा।
सरित, सरोवर, कूचे, गलियाँ, मनहर बाग-बगीचा॥
बताऊँ क्या तुमसे दिल खोल, नहीं बनता है बतलाते।
हमारी हालत है बेज़ार देखते हो आते-जाते॥
आओ बोलो बचन-सुधा की मधु-मिसरी घोलो।
कहाँ हो! आओ, कुछ बोलो॥

(५)

जोह रहा हूँ बाट तुम्हारी सदियों से हे प्यारे।
करता हूँ आह्वान निरन्तर हे मञ्जुल मतवारे॥
किया माया ने मटियामेट, घेर कर चक्कर में डाला।
दीखता पथ का ओर न छोर भटकता मानो पी हाला॥
हाथ पकड़ लो, राह बता दो, मेरे सँग होलो।
कहाँ हो? आओ कुछ बोलो॥

—ज्योतिप्रसाद मिश्र "निर्मल"

मन की भावना

क्षुद्र का कैसा उपहार!
नहीं जानता तेरे सारे वैज्ञानिक उपचार॥
नहीं समाधि लगाकर जिसने किया तुझे आहूत,
तत्व विचार निरत रहकर जो बना नहीं अवधूत—
उस प्राणी का होगा कैसा तेरे प्रति व्यवहार,

भक्ति-भाव से हीन रहा जो रहकर निपट गँवार ॥
किन्तु बिताया अपना जीवन जिसने हे भगवान—
सरलवृत्ति धारण कर जग में तज सारा अभिमान,
अपनी मन्द चाल से चल कर की तुझसे कुछ प्रीति ।
वह भी मतलब से ही मानो मन से तज सब भीति ॥

—देवीदत्त शुक्ल

इष्ट-बन्दना आदि

लक्ष्मी-पूजा

जयति-जयति लच्छमी, जयति माँ जग-उजियारी।
सर्वोपरि सर्वोपम सब्बहु तें अति प्यारी॥
व्यापि रह्यो चहुँ ओर तेज जननी इक तेरो।
तव आनन की जोति होत यह बिस्व उजेरो॥

जहँ चन्द्रमुखी मुखचन्द्र की, किरनन उजियारो करैं।
जहँ तम न कटै युग कोटि लौं, कोटि भानु पचि-पचि मरैं।

"विन तेरे सब जगत जननि मृतवत् अरु निसफल।"
देवन वात कही यह साँची छाँड़ि छोभ छल॥
तोहि छाँड़ि माँ ! देवन केतो ही दुख पायो।
सुरपति चन्द्र कुबेरहु तैं नहिं मिट्यो मिटायो॥

जब सूखे तालू, ओठ, मुख, चरन गहे तब आयके।
तब दूर भयो दुख सुरन को, रहे नैन भर लाय के॥

जा घर नहिं तव बास मात सोई घर सूनो।
द्वार-द्वार बिडरात फिरैं तुव कृपा बिहूनो॥
औरन की को कहै, स्वजन जब धक्का मारैं।
अपने घर के ही घर सों कर पकरि निकारैं॥

नहिं भ्रात, मात अरु बन्धु कोउ, निरधन को आदर करै।
निज नारिहु माँ तुव कृपा बिन आनन-मोरि निरादरै॥

कोटि बुद्धि किन होहिं बिना तव काम न आवैं।
कोटिन चतुराई तव बिन धूरहि मिल जावैं॥

तहँ कहँ बुद्धि थिराय मात जहँ बास न तेरो।
जहाँ न दीपक बरै रहै केहि भाँति उजेरो॥

बहु बुद्धिमान तव कृपा बिन, बुद्धि खोय मारे फिरैं।
केते मूरख तव लाड़िले; दूरि-दूरि तिनको करैं॥

जप-तप, तीरथ, होम, यज्ञ तव बिन कछु नाहीं।
स्वारथ परमारथ सबरो तेरे ही माहीं॥
चलै न घर को काज न पितृन अरु देवन को।
जनम लेत तव कृपा बिना नर दुख-सेवन को॥

जय जयति अखिल ब्रह्मांड के जीवन की आधार जो।
जय जयति लच्छमी जगत की एक मात्र सुख-सार जो॥

भलो कियो री मात आप कीन्हों पुनि फेरो।
तुम्हरे आये हमरे घर को मिट्यो अँधेरो॥
तुम्हरे कारज आज मात दीपावलि बारी।
घर लीप्यो, टूटी-फूटी सब बस्तु सँवारी॥

तुम्हरे आये तव सुतन को, आज अनन्द अपार है।
सब फूले-फूले फिरत हैं, तन की नाहिं सम्हार है॥

मात आपने कङ्गालन की दसा निहारो।
जिनके आँसुन भीज रह्यो तव आँचल सारो॥
कोटिन पै रहि उड़त पताका माँ जिनके घर।
सो कौड़ी-कौड़ी को हाथ पसारत दर-दर॥

हा! तो-सी जननी पायके, कङ्गाल नाम हमरो पर्यो!
धिक-धिक जीवन माँ लच्छमी, अब हम चाहत हैं मर्यो!!

गजरथ तुरग बिहीन भये ताको डर नाहीं।
चँवर छत्र को चाव नाहिं हमरे उर माहीं॥

सिंहासन अरु राजपाट को नाहिं उरहनो।
ना हम चाहत अन्न-वस्त्र सुन्दर पट गहनो॥
पै हाथ जोरि हम आज यह, रोय-रोय बिनती करैं!
या भूखे पापी पेट कहँ, मात कहो कैसे भरें ?

—बालमुकुन्द गुप्त

व्रजभाषा

व्रजभाषा भाषा ललित, कलित कृष्ण की केलि।
या व्रजमण्डल में उगी, ताकी घर-घर बेलि॥१॥
ह्याँ से चहुँ दिसि बिस्तरी, पूरब पच्छिम देश।
उत्तर दच्छिण लौं गई, ताकी छटा असेस॥२॥
सूर सूर तुलसी, ससी, उडगन केशवदास।
देव, बिहारी, दयानिधि, पद्माकर, हरिदास॥३॥
श्री हरिवंश, हरिप्रिया, आनँदघन, हरिचन्द।
ललितकिशोरी, माधुरी, व्रजवासी अरु बन्द॥४॥
इन कविजन कविता करी, कलि उद्धारन हेत।
कृष्ण-कृपा भव-सिन्धु के, उद्धारन हित सेत॥५॥

हिन्दी

कविता-कामिनि भाल में, हिन्दी बिन्दी रूप।
प्रगट अग्र बन में भई व्रज के निकट अनूप॥६॥
लाल करी जेहि अङ्कुरित, शिवप्रसाद द्वै पात।
कुसुमित भारत-इन्दु ने रचना रचि विख्यात॥७॥

प्रार्थना

कवि, पण्डित, परिजन, प्रकृति, छात्र, रसिक, रिझवार।
राजा प्रजा सुप्रेमवश करि हिन्दी को प्यार ॥८॥
हिन्दी हिन्दुस्तान की भाषा बिसद बिसाल।
जनम लेत सब सों कहैं "माँ माँ! दा दा!" बाल ॥९॥
घर की औघट घाट की, खेत प्रेत समसान।
हाट-बाट दरबार की भाषा ये ही जान ॥१०॥
पितुऋण शोध सकें सहज कठिन मातु ऋण जान।
ताही के उद्धार हित यज्ञ रची समहान ॥११॥
जासे जो कुछ बन सके माता पद अरविन्द।
भक्ति भाव से पूजिये, रहहु सदा आनन्द ॥१२॥

—राधाचरण गोस्वामी

हे कविते!

सुरम्यरूपे रस-राशि-रञ्जिते, विचित्रवर्णाभरणे कहाँ गयी?
अलौकिकानंद-विधायिनी महा, कवीन्द्र-कान्ते? कविते? अहो कयी?
कहाँ मनोहारि-मनोज्ञता गयी, कहाँ छटा क्षीण हुई नयी नयी?
कहीं न तेरी कमनीयता रही, बता तुही तू किस लोक को गयी?



पता नहीं है भुवनान्तराल में, कहाँ गई है तव रम्यरूपता।
सजीव होती यदि जीव-लोक में, कभी कहीं तो मिलती अवश्य ही।
सती हुई क्या कवि कालिदास के, शरीर के साथ तभी अनाथ हो।
विलुप्त किंवा भवभूति-सङ्ग ही, हुई मही से अवलम्ब के बिना॥

प्रयाण तूने तब जो नहीं किया, बिराजती भूतल में रही कहीं ।
अवश्य श्रीहर्ष-शरीर गोद ले, सहर्ष तू साथ गई, गई, गई ॥
हुआ पुनर्जन्म फिर [illegible]-देश में, परन्तु सो भी कुछ काल के लिए ।
पता वहाँ भी मिलता नहीं हमें, बता कहाँ है अब तू मनोरमे ?



नितान्त अन्धों पर भी कभी-कभी, कृपावती होकर हे सुलक्षणे ?
सदैव तू सम्मुख-मन्दिरस्थिता, प्रकाशती है निज सर्व-सम्पदा ॥
सुनेत्रधारी यदि चाहती नहीं, अनेत्रियों का न अभाव हिन्द में ।
अतः उन्हीं से चुन एक-आध को, कृपाधिकारी अपना बना, बना ।



कभी-कभी तू अब भी दयाधने, दयालु होती इस दीन देश पै ।
महान् महाराष्ट्र विशाल बङ्ग में, निवास तेरा कविते अभी हुआ ॥
मनुष्य सारे सम हैं तुझे सदा, विचारती जाति न पाँति तू कभी ।
इसीलिए दोष तुझे न दे सकें, अनेक दोषाकर हाय ! हैं हमीं ॥



अनन्त वर्षावधि तू यहाँ रही, तथापि तेरा कुछ ज्ञान ही नहीं ।
विचित्रता और विशेष क्या कहें, कृतघ्नता का बस अन्त हो गया !!
अभी हमें ज्ञात यही नहीं हुआ, रही किमाकारक तू रसात्मिके ।
स्वरूप ही का जब ज्ञान है नहीं, विभूषणों की तब क्या कहें कथा ॥



तुकान्त ही में कवितान्त है, यही,—प्रमाण, कोई मतिमान मानते ।
उन्हें नहीं काम कदापि और से, अहो महामोह प्रचण्ड ताण्डव ॥
कवीश कोई यमकच्छटामयी, अनेक रंगी वर वस्तु कञ्चुकी—
दिखा-दिखा के तुझको विचक्षणे, तुझे वशीभूत हुई विचारते ॥

सदा समस्या सबको नयी, नयी, सुना सुना, पाकर पूत पूर्तियाँ।
तुझे उन्हीं में अनुरक्त मान वे, विरक्त होते न, अहो रसज्ञता॥
कहीं कहीं छन्द, कहीं सुचित्रता, कहीं अनुप्रास-विशेष में तुझे।
सुजान हैं ढूँढ़ रहे जहाँ-तहाँ, परन्तु तू काव्य-काले वहाँ कहाँ?



बना सके आकृति भी कभी यदि, वृथा परिश्रान्त तथापि सर्वथा।
बताइए, जीव-विहीन देह से, सजीव की सुन्दरि क्या समानता?
विचार ऐसे जगदम्ब हैं जहाँ, न दर्शनों का तव आसरा वहाँ।
अजेय इच्छा उस ईश की उसे, विनष्ट कोई सकता नहीं कर॥



विडम्बना जो यह हो रही तव, समूल ही भूल उसे दयामयि।
पधारने की अभिलाष हो यदि, न आ अभी तद्यपि हे मनोहरे॥
अभी मिलेगा व्रज-मण्डलान्त का, अयुक्त भाषामय वस्त्र एक ही।
शरीर-संगी करके उसे सदा, विराग होगा तुझको अवश्य ही॥



इसीलिए ही भवभूति-भाविते, अभी यहाँ हे कविते न आ, न आ।
बता तुही कौन कुलीन कामिनी, सदा चहेगी पट एक ही वही?
सुरम्यता ही कमनीय कान्ति है, अमूल्य आत्मा रस है मनोहरे।
शरीर तेरा सब शब्दमात्र है, नितान्त निष्कर्ष यही, यही, यही॥



हुआ जिन्हें ज्ञात रहस्य है यह, वही वशीभूत तुझे करेंगे।
विलम्ब सेवा अविलम्ब सेवा, दया उन्हीं पै तव देवि होगी॥

कुछ समय गये पै योग्यता जो दिखावे,
सदय-हृदय होके तू उसी के यहाँ आ।

न उचित अबला का नित्य स्वच्छन्द वास,
बस अधिक कहें क्या हे महामोह दात्रि !
—महावीरप्रसाद द्विवेदी

गंगा-गौरव

(१)

बिधि बरदायक की सुकृत-समृद्धि-वृद्धि,
संभु सुर-नायक की सिद्धि की सुनाका है ।
कहै 'रतनाकर' त्रिलोक-सोक नासन कौं,
अतुल त्रिबिक्रम के बिक्रम की साका है ॥
जम-भय भारी तम-तोम निरवारन कौं,
गंगा, यह रावरी तरंग तुंग राका है ।
सागर-कुमारनि के तारन की श्रेनी सुभ,
भूपति भगीरथ के पुन्य की पताका है ॥

(२)

जाय जमराज सौं पुकारे जमदूत सबै,
साहिबी तिहारी अब लाजतै रहति है ।
पापिन की मण्डली उमंडि मोद मंडित,
अखण्डल के मंडल लौं राजतै रहति है ॥
सापी, परतापी औ सुरापी हूँ न आवैं हाथ,
तिनहूँ पै छेम-छत्र छाजतै रहति है ।
दगा करैं हम सौं हमेस हठि भृंगीगन,
गंगा संभु सीस चढ़ी गाजतै रहति है ॥

(३)

उड़त फुहारनि कौ तारन-प्रभाव पेखि,
जम हिय हारे मनौं मारे करकनि के।
चित्र से चकित चित्रगुप्त चपि चाहि रहे,
बेधे जात मंडल अखंड अरकनि के॥
गंग-छींट छटकि परै न कहूँ आनि इतै,
दूत इमि तानत बितान तरकनि के॥
भागे जित तित तें अभागे भय-पागे सबै,
लागे दौरि-दौरि देन द्वार नरकनि के॥

(४)

बोधि बुधि बिधि के कमंडल उठावत हीं,
धाक सुर-धुनि की धँसी यौं घट-घट मैं।
कहै 'रतनाकर' सुरासुर ससंक सबै,
बिबस बिलोकत लिखे से चित्रपट मैं॥
लोकपाल दौरन दसौ दिसि हहरि लागे,
हरि लागे हेरन सुपात बर बट मैं।
खसन गिरीस लागे, त्रसन नदीस लागे,
ईस लागे कसन फनीस कटि-तट मैं॥

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

कविता गायत्री

(क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत्कवयो वदन्ति)

कविता ताकों कहैं हृदय पृथिवी जब हालै।
गहन गहन बन गुहा गगन ज्यों गेंद उछालै॥

कविता ताकौ कहैं हृदय रमनी जब रूठै ।
मधुर मधुर जग कोऊ नवल मुरली धुनि तूठै ॥
कविता सो सत्कल्पना दे सपनध्या प्रात ।
कविता जिय को जागरन, भुवन भुवन की रात ॥
मिहिरमिलित ससि सिला सिखर हिमवत सी बिहरैं ।
प्रलय समुद की बृहद हिलोरैं दुर्मद लहरैं ॥
मुख मुकुन्द के लसै ललित रेखा गोरोचन ।
किधौं राम को हृदय किधौं सीता के लोचन ॥
बलि बलि कला अखण्ड की, कियो अमर उजियार ।
जगै दिवानिसि कल्पना, जगत जगावनहार ॥

—शिवाधार पाण्डेय

नगर-वर्णन

[पुर-दर्शन]

कोऊ धाय हेरैं कोऊ काहू कहँ टेरैं,
कोऊ जाय लखैं नेरैं, कोऊ दूर ते सिधारे हैं ।
कोऊ काहू बूझैं, कोऊ काहू ते अरूझैं,
कोऊ काहु हठि जूझैं कोऊ काहू को निवारे हैं ।
कोऊ द्वार, कोऊ हैं दिवार कोऊ छज्जन पै,
कोऊ तौ अटारी नरनारी यों निहारे हैं ।
रसिकविहारी सुखकारी धनुधारी दोऊ,
पुर अवलोकैं मन्द मन्द ही पधारे हैं ।



कोई कहैं दोई ननदोई तुव आली देखे,
कोई कहैं दोई बहनोई तो सिधारे हैं ॥
कोई कहैं दोई जेठ तेरे, तू न हेरे भटू,
कोई कहैं गोरे तोरे देवर निहारे हैं ।
रसिकबिहारी पुरनारी सँगवारी सबै,
मोद ते विनोद बैन बिबिध उचारे हैं ।
तौलौं एक बोली कन्त साँवरे हमारे, सब
बोली यों "हमारे हैं, हमारे हैं, हमारे हैं ।"



अंग अंग परसै सुढंग रंग रंग रचैं ,
सहित उमंग संग-संग चहुँ डोलै हैं ।
कोऊ इतरायँ, अनखायँ औ रिसायँ कोऊ,
कोऊ बतरायँ, कोऊ करत किलोलै हैं ।
रसिकबिहारी नेहबस रघुलाल तिन्हैं,
करत निहाल प्रति-रीति अनमोलै हैं ।
कोऊ देत गारी कोऊ देत करतारी कोऊ,
करैं मनुहारी कोऊ बाल हँसि बोलै हैं ।



धर्म नहिं जानो औ अधर्म नहिं जानो रंच,
सत्य नहिं जानो औ असत्य नहिं जानौं हौं ।
तात को न जानौं, मात भ्रात को न जानौं;
गुरु ज्ञाति को न जानौं जात-पाँतको न जानौं हौं ।
देव को न जानौं औ अदेव को न जानौं,
लेव-देव को न जानौं सेव-भेद को न जानौं हौं ।

रसिकबिहारी करौं शपथ तिहारी नाथ,
हौं तो एक रावरी रजाय दृढ़ जानौं हौं ।

—रसिकबिहारी

काशी-वर्णन

बरनि सकै को विश्वनाथ की पुरी सुहावन।
देवनचित तरसावन, मुनिजन हिय हरखावन ॥
दूरहि ते दरसात बिलच्छन वाकी सोभा ।
चलत चलत लखि ठठकि जात पथिकहु मन लोभा ॥
सीतल लखि कै गङ्गातट हरगिरि जनु सोयो।
मनहुँ मेघ को बृन्द भूमितल आय समोयो ॥
अहै मनहु साकेतपुरी जल-थल सों ऊँची ।
कैधों है बैकुण्ठपुरी सुखदानि समूची ॥
ऊँचे ऊँचे कलस दूर ही सों अति चमकत।
चन्द सूर की किरन परैं दूनी दुति दमकत ॥
अमृतघट सिर लिये मनहु गृह-देवी ठाढ़ी।
जात्रीगन कों मङ्गलमय छबि दीखत वाढ़ी ॥
मेघन की लहि रगर मनहु दमकत अति दूने।
चमचमात से कलस बिज्जु के मनहु नमूने ॥
चिदानन्द की भरी पोटरी से छबि छाजत।
मनहु मुक्ति के वसीकरन टोटका बिराजत ॥
तिनके बिच-बिच लसत धुजा फर-फर फहराती।
पापिन के जनु पापन को फटकारि उड़ाती ॥

दूर-दूर के मनहुँ बटोहिन निकट बुलाती।
जमदूतन को धकधकाय दम-दम दमकाती॥
मूर्तिमती जनुकीर्ति कासिका की लहराती।
अति कराल कलिकाल बिजय-बीची छहराती॥
बिधि की रेख मिटावति सी उज्जल दरसाती।
लसहिं पताका रङ्ग-बिरङ्गी हिय सरसाती॥
मधुर दुन्दुभी सङ्ग मधुर बाजत सहनाई।
मधुर-मधुर ही राग मधुरता हिय बगराई॥
आँखिन में भरि जात मधुर वह रूपलुनाई।
धन्य मधुरता जहाँ सम्भु हू गये लुभाई॥
धीमी धीमी धार सुरधुनी ता ढिंग सोहत।
पुलकि पसीजत मुनिजन हू जाकी छबि जोहत॥
जाकी सोभा देख चिदानँद हिय आरोहत।
देव-देव के सहस नयन हू इहि लखि मोहत॥
देवधुनी हू कासी ढिंग लहि आनंद सोवति।
परम प्रेम जनु पागि कासिका के पग धोवति॥
मुक्ति-लता के अंकुर कों सींचति सी धावति।
लहरन कों लहराइ प्रेम अतिसै सरसावति॥

—अम्बिकादत्त व्यास

श्रीनगर-वर्णन

धन्य नगर श्रीनगर बितस्ता-कूलन सोहै।
पुलिन भौन प्रतिबिम्ब सलिल सोभा मन मोहै॥

लसत कदल पुल सप्त चपल नौकागन डोलैं ।
रूप-रासि नरनारि वारि बिच करत किलोलैं ॥
'शेरगढ़ी' नृप-भौन सरिततट सोहत सुन्दर ।
बिज्जु दीप-दुति निरखि स्वर्गपुरि दुरत पुरन्दर ॥
हेमपत्रमय तत्र गदाधरजू हरिमंदिर ।
राजभवन-अवलम्बि राजकुल-कीर्तिथम्ब थिर ॥
गिरि ऊपर सों लगत नगर-छबि निपट निराली ।
बर्गाकृति घर नगर बिछे बहु सोभासाली ॥
सोहत सो चहुँ ओर सुघर घर-अवलि एकसी ।
बीच बितस्ता-धार सजत सुचि रजत-रेख सी ॥
धन्य शारिका भवन 'हरी-पर्वत' गढ़ मण्डन ।
दुधगंगा सित अम्बु अंगपरसन श्रमखंडन ॥
धन्य शंकराचार्य परम पावन गिरिशेखर ।
'खीरभवानी' कुण्ड धन्य मार्तण्ड पुन्य थर ॥
धन्य तथा बाराह मूल कलि-कलुषसूलहर ।
मुनिजन-मन-अनुकूल सकल अघ-उन्मूलनकर ॥
'अमरनाथ' सुचिगाथ आदि शवतीरथ राजै ।
महामहिम हिमलिंग हिमाचल कोखि बिराजै ॥
धन्य राजप्रिय प्रजा प्रजाप्रिय राज सुखारी ।
धनि पुनीत नृपनीति प्रीतिपथ-पोखनहारी ॥
यवन-आर्य-बिच न्याय-मध्य कछु भेद न दीसत ।
सोवत सुखकी नींद सबै निज-नृपहिं असीसत ॥
धन्य भिन्न मत प्रजा मध्य यह भेद अभावा ।
विमल न्याय,नय,सुमति,शील,बल,बुद्धि प्रभावा ॥

धन्य डोगरा-भानु बंस अवतंस अवनि-पति ।
गो-द्विजकुल-प्रतिपाल-बिकसि-रहि-उज्जल-कीरति ॥
धन्य धर्म-पति सुकृति-निरत हरि-भक्तधुरन्धर ।
श्रीराजर्षि प्रतापसिंह कश्मीर-पुरन्दर ॥
जिन अतिसय सज्जनता को परिचय मोहिं दीनों ।
हित सों बोलि सनेहसहित सम्मानित कीनो ॥
प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति ।
पल-पल पलटति भेष छनिक छबि छिन-छिन धारति ॥
बिमल अम्बु सर मुकुरन महँ मुख-बिम्ब निहारति ।
अपनी छबि पै मोहि आप ही तन मन वारति ॥
सजति, सजावत, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी ।
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी ॥
मधुर मञ्जु छविपुञ्ज छटा छरकति बन कुञ्जन ।
चितवति,रिझवति,हँसति,डसति,मुसक्याति, हरितमन ॥
यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि-धरि बहु भाँतिन ।
सर, सरिता, गिरि, शिखर,गगन,गह्वर,तरुवर, तृन ॥
पूरन करिबे काज कामना अपने मन की ।
किंकरता करि रह्यो प्रकृति-पङ्कज चरनन की ॥
चहुँदिसि हिम-गिरि-सिखरहीरमनिमौल-अवलि-मनु ।
स्रवत सरित-सित-धार द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु ॥
फल फूलन छबि छटा छई जो बन उपवन की ।
उदित भई मनु अवनि-उदर सो निधि रतनन की ॥
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, बिपिनन की मिलि सो छबि ।
छई मण्डलाकार रही चारहुँ दिसि यों फबि ॥

मानहुँ मनियन मौलि-माल-आकृति अलबेली ।
बाँधी बिधि अनमोल गोल भारत सिर सेली ॥
अर्द्धचन्द्र सम सिखर स्रैनि कहुँ यों छबि छाई ।
मानहु चन्दन धौरि गौरि गुरु खौरि लगाई ॥
पुनि पुनि स्रैनिन बीच बितस्ता रेख जु राजति ।
बैष्णव "श्री" अरु शिव त्रिसूल की आभा भ्राजति ॥

—श्रीधर पाठक

बृन्दाबन

(१)

सूर सुखमा को सोई सुन्दर चमतकार,
देव सतकार को सनेह सोई सनो है ।
गलिन गलिन रसलीन तैसे देखि परैं,
बिमल बिहारी को बिभव सोई घनो है ।
रसखानि चाव भरे लूटत रसिक अजौं,
नागरी किसोरी को तनाव सोई तनो है ।
सुजस कहानी ब्रजराज की सुखद सोई,
सोई बृन्दाबन है, बनाव सोई बनो है ॥

(२)

वाको सूर रुचत निदाघ मैं न रंचकऊ,
याको सूर रसिकन सदा सुखदाई है ।
वाके देव चाहैं तौ अनीति हू निवाहैं कबौं,
याको देव एक रसरीति सरसाई है ।

वाको बात करुई सुहावनी बराबरि है,
याकी बानी सूधी धार माधुरी बहाई है।
करि करि हारे हैं उपाय चतुरानन पै,
चारु बृन्दाबन की न पायी समताई है॥

(३)

सूर सूझ-बूझ हित देव वन्दना को दये,
रसखानि लूटिबे को सुखमा सुछंद की।
चारुता को भूखन, बिहार को बिहारी दये,
दीन्हीं है ललित रस रीति घनानन्द की।
पावन सनेह दै रुखाई मारि दूरि करी
माधुरी अमित दई परम पसन्द की।
एरे बृन्दाबन तेरो कहा लौं बखान करौं,
सुखद सुनाई बंसी प्यारे ब्रजचन्द की॥

—कृष्णबिहारी मिश्र

ऐतिहासिक

पृथ्वीराज-प्रयाण

जननी हमें सीख अब दीजे।
परम कुपूत पूत तेरो यह ताहि विदा अब कीजे ॥
पूत कुपूत होत बहुतै पै होत कुमाता नाहीं।
बरु कुपूत पै अधिक मातुरुचि होतै रही सदाहीं ॥
करिकै यहै भरोस मातु माँगत तुम पै करजोरे।
छमियो सब अपराध हमारे पुत्र-सनेह निहोरे ॥
करिकै बहुत साध जनमायो बहु आसा करि पोष्यो।
राज-छत्र दै मान बढ़ायो सबहि भाँति संतोष्यो ॥
पै या भाग्यहीन ने माता कोउ आसा न पुरायो।
केवल बोझ भयो तुव ऊपर दिन-दिन अधिक सतायो ॥
रक्त-प्रवाह बहाइ, जीति बहु देस, छत्र सिरधार्यो।
राज-बढ़ावनलोभ मातु हम देसबन्धु बहु मार्यो !
सोइ सब पाप आइ सिर नाच्यो छलियन के छल हार्यो।
हाय मातु ! तोहि दै यवननकर चहत बिदेस सिधार्यो ॥
परम पवित्र सस्य धन पूरित रत्नमयी सुखदायी।
जासु अनूप रूप पै सुरगन रहत सदा ललचायी ॥
रही अनादिकाल सों पालित जो आरजभुज-छाहीं।
ताहि अधम अतिभाग्यहीन हम राखि सके हठ नाहीं ॥
मातु बहुत सुख पायो तुम मम पुरुषन के आधीना।
अब वह सुख सपने से ह्वै हैं हाय दैव ! कह कीना !!

यद्यपि हम सबही बिधि दोषी, लग्यो कलङ्क हमारे ।
पै निर्दोष मातु सब भाँतिहिं जो जिय न्याय बिचारे ॥

अपनेहि भाईबन्धु आपही करैं जो छल और द्रोहा ।
तो रच्छा ह्वै सकै कौन बिधि जो बिधिही बुध-मोहा ॥

ताहू पै निज भुज-प्रताप दुष्टन कों दियो भगाई ।
छली चोर छल सों जीते याको नहिं हमैं हँसाई ॥

होनहार जो रह्यो भयो अब सोच किये फल नाहीं ।
मातु बिदा अब देहु हाय! बिछुरत तुव पद-नख छाहीं !!

पुन्य भूमि में जनम हाय ! अब मरन चल्यों मरुदेसा !
आर्य-ध्वजा दै शत्रु हाथ मैं यह अति हाय कलेसा !!

अपुने किये कर्मफल भोगन में कछु दुख मोहिं नाहीं ।
पै जननी तुव भावी दसा बिचारि हृदय फटि जाहीं ॥

ये देवालय, बेदशास्त्र ये, यह गो-ब्राह्मण पूजा ।
यह पवित्रतम धर्मभाव जग में न जासु सम दूजा ॥

हाय ! महाद्रोही यवननकर परि सब कलुषित ह्वै हैं ।
पाप ताप पूरित भुवि करिके घोर यंत्रणा दैहैं ॥

जाकी विद्या कला और कौशल की छटा लुभाई ।
इकटक देखत रहत जगत मोहित ह्वै सुधि बिसराई ॥

होइ यवन पददलित सोइ सब माटी ही ह्वै जैहैं ।
चारहु दिसि मूढ़ता बेबसी कछु दिन माँहि लखैहैं ॥

जा भारत प्रताप दिसि लख जग चख चकचौंधी लागै ।
हाय ! कहा सो लुटिहै पदतर सोचत ही बुद्धि भागै ॥

ऐसे करत तर्क व्याकुल ह्वै कण्ठ रुद्ध ह्वै आयो ।
"चल काफ़िर क्या रोता है" इक यवन ढकेल सनायो ॥

गिरत सम्हारि सचेत होइ करजोरि जननि पग लागी।
देसबन्धु दिसि हेरि बचन बोले आरत रस पागी॥
भैया ! मैया दे यवनन कर हम तो जात बिदेसा।
तुम रच्छा करिहौ जहँ लौं बस होइ न याहि कलेसा॥
जद्यपि पराधीन भै पै जो आत्मपनौ न बिसरिहौ।
धर्म, ऐक्य, विद्या अनुसरिहौ तौ अरिसोस बिहरिहौ॥
जैसे भई दसा यह सो तुम निज नैननहिं निहारौ।
दूर बहाइ खीर सी इक ह्वै भारत मातु उबारौ॥
जिन भूलौ निज पुरुषन के गौरव की भ्रात कहानी।
सिमिट शत्रुबल मेंटि उबारौ भारत भुव सुख खानी॥
सुनत बचन यह यवन-सेन चहुँ दिसि सों गरजन लागी।
मुसुक बाँधि भारत-गौरव कों भारत सों लै भागी॥
चिरस्वतंत्रता चिरगौरव चिरसुख छिन माहिं बिलाई।
बँधि चिर दिन दासत्व-शृङ्खला भारत भुवि बिलखाई॥
दीनबन्धु निज विरद सम्हारौ दीन-दुखित-दुखहारौ।
हे भारत ! भुवनाथ !! हाथ गहि भारत-भूमि उबारौ॥

—राधाकृष्णदास

जागु पिया

जागु पिया, सुख-निसा सिरानी, तारा अस्त भये।
धरु धीरज, करु कठिन हृदय, सहने हैं दुःख नये॥
जानौं मोहिं अति दूर, मरुन पर, अरु पर्बत घाटिन में।
जेहि सुमिरत मन थकत चलत नहिं, नद, बर्फन अरु बन में॥

अरु अचरज भय मय समुद्र को पार बहुत लहरन में।
तापर ठाँव पहुँचि दारुन रन करनौ है रिपुगन में॥
रक्त मास कौ कीच बनत जहँ छिन मैं नर देहन तें।
अरु तिनमें तिल-मात्र भूमि नहिं हटनौ है मन तन तें॥
होत बहुत दुख सरल प्रजा को नित निज जिन दुष्टन तें।
जागु पिया अरु देखु मोहिं भरि वीरधर्म नयनन में॥
इष्टदेव तें जय मनाउ मोहिं, दुःख ल्याउ नहिं मन में।
जीति, लौटि, अँकवार भेंटि तेहिं हँसौं फेरि उपवन में॥
तजौं देह जौ सदा होय तौ संग जनम जनमन में।
तिनके चित परमात्म भाव नहिं सोक मोह उन जन में॥
जागु पिया, तमनिसा सिरानी दिन-मनि उदय भये।
धरु धीरज करु शान्त हृदय करने हैं काज नये॥

—भगवानदास

पौराणिक

मदन-दहन

(१)

निरखि जासु लावण्य रतिहुकर मद दुरि भाज्या।
लाज सृष्टि कर हेतु जाहिसन दृढ़ता साज्यो ॥
तेहि गिरिजहि लखि मीनकेत साहस पुनि धारयो।
इन्द्रियजित शिवमाहिं काज की सिद्धि बिचारयो ॥
निज होनहार पति-द्वार जब, भई प्राप्त सैलेश जा।
लखि परम आतमा निज हृदय, तज्यो ध्यान त्रिभुवन पिता ॥

(२)

आसन महि बहु जतन जासु धारत सहसासन।
मन्द मन्द हर मोचि श्वांस छाड़यो बीरासन ॥
तब नन्दी कर जोरि तुरत शिव सम्मुख जाई।
सेवा-हित गिरिराज-सुता की कह्यो अवाई ॥
सो भृकुटिसहितचख चालि प्रभु, अंगीकृत संज्ञहि करयो।
तब सकुचि गौरि मुख मोरि कछु, लता-भवनबिच पग धरयो ॥

(३)

लघु पातनयुत चुन्यो सखिन निजकर मधु फूलन।
तिन्हैं सहित परनाम समरप्यो शिव-पद-मूलन ॥
करत दण्डवत प्रभुहि उमा के नील अलक सों।
नव कनेर खसि खसे श्रवन के पात झलक सों ॥

नहिं आनतरुनि मुख जेहि लख्यो, लहुसों पति भव अस कह्यो।
सो औशि सत्य, बिपरीतता ईस बचन कबहूँ लह्यो ?

(४)

धावत यथा पतंग अनल दिशि मीचु भुलाई।
तथा सुऔसर जानि असमसर संग बिहाई॥
पारबतिहि शिव निकट देखि साध्यो धनु शायक।
ताही छिन गिरि-सुता कञ्जसम कर सुखदायक॥
सो, रविकिरननि सूखे कमल, गंगधार सन जे लियो।
तिन्ह बीज-माल तपसी हरहिं, प्रेम-सहित अरपित कियो॥

(५)

भक्ति प्रीति बस लगे शम्भु तेहि ग्रहन करन ज्यों।
सम्मोहन शर दुसह मार धनु बीच धरन ज्यों॥
चन्द्रोदय छिन सिन्धु-तरंगनि सरिस पुरारी।
चलिज धीर कछु रहे उमा मुखचन्द निहारी॥
करि दिप्तिमान कोमल-कदम, सम अङ्गनि भावहि प्रगट ;
मुख मोरि तिरीछे चखन सों, रही लाज बस ह्वै निपट॥

(६)

इन्द्रिय-जित-पन सों तदनु गो-बिकार पुनि रोधि।
जानन कारन तासु हर रहे सकल दिसि सोधि॥

(७)

हरिचक्र सम धनु धरे उद्यत करन बाण प्रहार।
अपसव्य चख ढिंग भूठि कीन्हों लख्यो हर तहँ मार।

कछु समा कुञ्चित किये दच्छिन पाँव कन्ध झुकाय।
अरु बाम पद्करि अग्र बिलसत दुतिय नैन दबाय॥

(८)

निज तपस्या निरखि बाधित कोप करि त्रिपुरारि।
भये बिकट स्वरूप, जो नहिं नेक जाति निहारि॥
भंग करि भृकुटीन दीन्हों तृतिय नैन उघारि।
कढ़ी जासों ज्वालमाल प्रचण्ड अति भयकारि॥

(९)

"छमहु हे प्रभु छमहु कोप कराल, त्रिभुवन पाल!
होय व्योम प्रवृत्त जौ लगि देव-रोर बिहाल॥
तासु प्रथमहि प्रलय करनि ललाट चख की ज्वाल।
कियो मारहि छारवत अति भरी तेज कराल॥

(१०)

अति अनादर जनित गो-गति सकल रोधनहार।
कन्तनास भुलाय, रति कर मोह किय उपकार॥
तपीहर तेहि बिघन-बिटपहि तड़ित सम झरसाय।
गणन सह भे गुप्त तरुनीगन समीप विहाय॥

(११)

यह चरित्र लखि शैलजा ह्वै भयभीत महान।
गई पिता-भवनहि सपदि; मन अति किये मलान॥

(१२)

स्वारथरत बहु लोग नेह अविचल दरसाई।
अभिमानिन बँहकाय लेहि निज काज बनाई॥

पै तिन पै जब परत आनि भावी कछु भारी।
तब शठ पूँछ दबाय जाहिं कढ़ि बिरद बिसारी॥
जिमि सहस नैन रतिनाथ कहँ, दिय बधाय निजकाज हित।
पुनि हर्‌यो शम्बरासुर रतिहि, रह्यो निलज चुप साधि तित॥

—श्यामविहारी मिश्र
—शुकदेवविहारी मिश्र

शक्ति-बन्दना

देखि कालिका को जंग सब होय जात दंग,
मति कविहूँ की पङ्ग नहिं सकत बखान।
कहूँ देखो न जहान नहिं परो कहूँ कान,
ऐसो जुद्ध भो महान महा प्रलय लखान॥
यातुधान कुल हान देखि देव हरखान,
मन मुदित महान हने तबल निसान।
जब झमकि झमकि पग ठमकि ठमकि,
चहूँ लमकि लमकि काली भारी किरपान॥

(२)

रूप देखि बिकराल काँपे दसो दिगपाल,
अब ह्वै है कौन हाल शेषनाग घबरान।
महाप्रलय समान मन कीन अनुमान,
राम रावण को युद्ध काहू गिनती न आन॥
लखि देवन अँदेस विधि हरि औ महेस,
तब साथ लै सुरेश करी अस्तुति महान।

माई कालिकाकी जय, माई कालिकाकी जय,
माई हू जे अब शांत ग्वूब भारी किरपान ॥

(२)

सुनि विनय अमान रूप छाड़ो है भयान,
सब मन हरखान करैं माई गुणगान।
चढ़ि चढ़ि के विमान देव धाये आसमान,
लिये पूजा को समान बहु फूल बरखान ॥
थाके बेद औ पुरान माई करत बखान,
जस तेरो है महान किमि कहै लघु भान।
दीजै यही वरदान दास अपनो ही जान,
रहै बैरिन पै सानचढ़ी तोरी किरपान ॥

—जगन्नाथप्रसाद "भानु"

यशोदा-उद्धव-संवाद

मेरे प्यारे सकुशल सुखी और सानन्द तो हैं ?
कोई चिन्ता मलिन उनको तो नहीं है बनाती ?
ऊधो छाती बदन पर है म्लानता भी नहीं तो ?
हो जाती हैं हृदय-तल में तो नहीं वेदनाएँ ? ॥
मीठे मेवे, मृदुल नवनी और पक्वान्न नाना।
धीरे प्रातोंसहित सुत को कौन होगी खिलाती ?
प्रातः पीता सुपय कजरी गाय का चाव से था।
हा! पाता है न अब उसको प्राणप्यारा हमारा ॥

संकोची है परम अति ही धीर है लाल मेरा।
लज्जा होती अमित उसको माँगने में सदा थी।
जैसे लेके स-रुचि सुतको अंक में मैं खिलाती।
हा! वैसे ही अब नित खिला कौन बामा सकेगी!
मैं थी सारा दिवस मुखको देखते ही बिताती।
हो जाती थी व्यथित उसको म्लान जो देखती थी।
हा! वैसे ही अब बदन को देखती कौन होगी।
ऊधो माता सदृश ममता अन्य की है न होती॥
खाने, पीने, शयन करने आदि की एक बेला।
जो जाती थी कुछ टल कभी, खेद होता बड़ा था॥
ऊधो ऐसी दुखित उसके हेतु क्यों अन्य होगी।
माता की-सी अवनितल में है अमाता न होती॥
जो पाती हूँ कुँवर-मुख के जोग मैं भोग प्यारा!
तो होती हैं हृदयतल में वेदनाएँ बड़ी ही॥
जो कोई भी सुफल सुत के योग्य मैं देखती हूँ।
हो जाती हूँ व्यथित अति ही दग्ध होती महा हूँ॥
जो लाती थीं विविध रंग के मुग्धकारी खिलौने।
वे आती हैं सदन अब भी कामना में पगीसी!
हा! जाती हैं पलट जब वे हो निराशा निमग्ना।
तो उन्मत्ता-सदृश मग की ओर मैं देखती हूँ!
आते लीला-निपुण नट हैं आज भी बाँध आशा।
कोई यों भी न अब उनके खेल को देखता है॥
प्यारे होते मुदित जितने कौतुकों से सदा थे।
वे आँखों में विषम दव हैं दर्शकों के लगाते॥

प्यारा खाता रुचिर नवनी को बड़े चाव से था।
खाते खाते पुलक पड़ता नाचता कूदता था ॥
ये बातें हैं सरस नवनी देखते याद आतीं।
हो जाता है मधुरतर औ स्निग्ध भी दग्धकारी ॥
हा ! जो बंशी सरसरव से विश्व को मोहती थी।
सो आले में मलिनबन औ मूक होके पड़ी है ।
जो छिद्रों से अमियबरसा भूरि थी मुग्धता की ।
सो उन्मत्ता परम विकला उन्मना है बनाती ॥
प्यारे ऊधो ! सुरत करता लाल मेरी कभी है ।
क्या होता है न अब उसको ध्यान बूढ़े पिता का ॥
रो-रो होके विकल अपने वार जो हैं बिताते ।
हा ! वे सीधे सरल शिशु हैं क्या नहीं याद आते ?
कैसे भूलीं सरस खनिसी प्रीति की गोपिकाएँ ?
कैसे भूले सुहृदयपन के सेतु से गोपग्वाले ॥
शान्ता धारा मधुर हृदया प्रेम-रूपा रसज्ञा ।
कैसे भूली प्रणय-प्रतिमा राधिका मोहमग्ना ? ॥
कैसे वृन्दा विपिन बिसरा, क्यों लता-बेलि भूली ?
कैसे जी से उतर सिगरी कुञ्ज-पुञ्जें गई हैं ? ॥
कैसे फूले विपुल फल से नम्र भूजात भूले ?
कैसे भूला विकच तरु सो कालिंदी कूलवाला ॥
सोती सोती चिहुँक कर जो श्याम को है बुलाती ।
ऊधो मेरी यह सदन की शारिका कांत कण्ठा
पाला पोसा प्रति-दिन जिसे श्याम ने प्यार से है ।
हा ! कैसे सो हृदयतल से दूर यों हो गई है !

कुञ्जों कुञ्जों प्रतिदिन जिन्हें चाव से था चराया ।
जो प्यारी थीं परमब्रज के लाड़िले को सदा ही ॥
खिन्ना, दीना, विकल बन में आज जो घूमती हैं,
ऊधौ कैसे हृदय-धन को हाय वे धेनु भूलीं ॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

कौशल्या-विलाप

तन मन जिस पै मैं वारती थी सदैव,
वह गहन बनों में जायगा हाय दैव !
सरसिज-तन हा हा कण्टकों में खिंचेगा !
घृत, मधु, पय-पाला स्वेद ही से सिंचेगा।
यह हृदय-बिदारी दृश्य मैं देखती हूँ ।
पवि-हृदय बनी हूँ, आज भी जी रही हूँ।
खल पतित अभागे प्राण जाते नहीं क्यों ?
रहकर तन में वे हैं लजाते नहीं क्यों ?
मणि-महल-निवासी कन्दरा में रहेगा !
बन परम उदासी कन्दरा में रहेगा !
मृदु-पद-तलवाला कङ्कड़ों में चलेगा !
तज मखमल आला कङ्कड़ों में चलेगा !
नव-नव-रस-भोजी खायगा कन्दमूल !
जब तक न मिलेगा नित्य इच्छानुकूल ॥
मृदु सुमन बिछौने जो बिछाता रहा था।
वह अजिन बिछावे, भाग्य में यों बदा था !

नरपति-सुत होके यों उदासी बनेगा !
यह खबर किसे थी दैव ऐसा तनेगा !
पल-पल भर में ही थी उसे देख लेती।
उस पर अपना मैं वार सर्वस्व देती।
वह मुझ दुखनी के नेत्र की ज्योति ही था।
बस अधिक कहूँ क्या, जान था और जी था !
वन वन फिरने को जायगा लाल मेरा !
विधि कुटिल करेगा हाय क्या हाल मेरा।
विधु-मुख न विलोके चैन कैसे पड़ेगी !
निज सब कुछ खोके चैन कैसे पड़ेगी !
वह वन छबिवाला सामने जो न होगा !
वह ममपयपाला सामने जो न होगा !
वह मृगदृगवाला दृष्टि से जो हटेगा।
यह कठिन कलेजा क्यों न मेरा फटेगा ?
वह मृदु मुसकाता जो न 'माता' कहेगा !
फिर सुख मुझको क्या प्राण रख के रहेगा ?
फिर मधुर मलाई मैं किसे हाय दूँगी !
वर विविध मिठाई मैं किसे हाय दूँगी।
मन मृदुवचनों से कौन मेरा हरेगा !
यह हृदय दुखी हो धैर्य कैसे धरेगा ?
प्रतिपल किसपे मैं प्राण वारा करूँगी ?
मुख-छवि किसकी मैं हा निहारा करूँगी !
विधि ! यदि जगती में जन्म मेरा न होता।
कुछ रुक रहता क्या, कार्य तेरा न होता !

दुख विषम सहाने के लिये था बनाया।
यह दिन दिखलाने के लिये था बनाया।
गुण-गण जिसके है गा रहा आज लोक ;
वह सुत बिछुड़ेगा शोक ! हा हन्त शोक।
वह नृप-पद पावे, मैं नहीं चाहती थी ;
दुख भरत उठावे, मैं नहीं चाहती थी।
सुरपति पदवी भी तुच्छ मैं मानती थी ;
बढ़कर सबसे मैं राम को जानती थी॥
सिर मुकुट बिना ही क्या न शोभा सना है ?
वह गुण-गरिमा से क्या न राज़ा बना है ?
भुज-बल समता में लोक में है न वीर ;
रण-सुभट यथा है, है तथा धर्मवीर॥
रतिपति-मद-हारी रूप भी है सलोना ;
वह सुरभि-सना है और है मञ्जु सोना।
प्रिय सुत वह मेरा वेश धारे यती का ;
निज नयन निहारूँ, दोष है भाग्य ही का॥
उर उपल धरूँगी और मैं क्या करूँगी ;
विधि-वश दुख ऐसे देख के ही मरूँगी।
विधि ! सहृदय हो तो प्रार्थना मान जाओ ;
अब तुम मुझको ही मेदिनी से उठाओ॥
मम प्रिय सुत छूटा, साथ ही देह छूटे ;
पलभर जननी का स्नेह-नाता न टूटे।
फल निज सुकृतों का हाय ! मैं पा रही हूँ ;
पर, विधि पर सारा दोष मैं ला रही हूँ॥

उर व्यथित महा है ज्ञान जाता रहा है ;
सदय विधि क्षमा दें, ध्यान जाता रहा है।
पर, विनय न मेरी हे विधाता भुलाना ;
मम सुत मित भोजी, तू न भूखा सुलाना !
दुख उस पर कोई और आने न पावे ;
मम कुँवरकन्हैया कष्ट पाने न पावे।
युग युग चिरजीवे, लोक में नाम होवे ;
फिर घर फिर आवे राम ही राम होवे ॥
किस विधि दुख झेलूँ, आर्ति कैसे घटेगी ?
यह अवधि बड़ी है, हाय कैसे कटेगी।
पल पल युग होगा याम तो कल्प होंगे ;
दिन दिन दुख दूना, कष्ट क्या अल्प होंगे ?
मतिहत दुख दीना धैर्य कैसे धरूँगी ;
सुध कर कर सुत मैं हाय रो-रो मरूँगी।
वह सुघर सलोना, अम्ब का प्राण प्यारा ;
वह सुरभित सोना अम्ब का प्राण प्यारा ॥
वह दृढ़-प्रण-पाली नीतिशाली कहाँ है ?
वह हृदयलता का मञ्जु माली कहाँ है ?
वह प्रबल प्रतापी हंस-बंशी कहाँ है ?
वह खल-गण-तापी विष्णु-अंशी कहाँ है ॥
तन सघन घटा सा श्याम प्यारा कहाँ है ?
वह अवधपुरी का राम प्यारा कहाँ है ?
वह मुझ जननी का चक्षु तारा कहाँ है ?
वह तन मन मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है ? ॥

वह कलरव-केकी बोलता क्यों नहीं है ?
अब मधु श्रवणों में घोलता क्यों नहीं है ?
वन क्षण भर में ही क्या गया हाय प्यारा ?
अब मुझ दुखिनी को क्या रहा है सहारा ?
फिर मम सुत कोई पास मेरे बुला दे ;
शशि-मुख बन जाते देख लूँ आ दिखा दे।
निज हृदय लगा लूँ. ताप सारी मिटा लूँ ।
फिर लख उसको मैं चित्त में चैन पालूँ ॥
घर दुखद बना है जो कि था मोद-धाम ;
मम प्रिय सुत हा! हा! राम ! हा राम! राम!
यह कहकर रानी हो गई चेत-हीन—
जल तजकर जैसे खिन्न हो मीन दीन ॥

—"सनेही"

भ्रमरदूत

श्रीराधावर निजजन-बाधा सकल नसावन,
जाकौ ब्रज मनभावन जौ ब्रज कौ मनभावन,
रसिकसिरोमनि मन-हरन निरमल नेह-निकुञ्ज,
मोद-लहन उर-सुख-करन अविचल आनँद-पुञ्ज ॥
रँगीलो साँवरो ॥ १ ॥

कंस-मारि भू-भार-उतारन खल-दल तारन।
बिस्तारन विज्ञान बिमल श्रुति सेतु सँवारन ॥

जन-मन-रंजन सोहना, गुनआगर चित-चोर।
भव-भय-भञ्जन मोहना नागर नन्दकिसोर
गयो जब द्वारिका ॥ २ ॥

बिललाती सनेह-पुलकाती जसुमति माई।
श्याम-बिरह-अकुलाती पाती कबहुँ न पाई॥
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना छिन-छिन परम अधीर।
सोचति मोचति निसिदिना निसरत नैननु नीर॥
बिकल कल ना हिये॥ ३ ॥

पावन सावन मास नई उनई घन-पाँती।
मुनि-मनभाई छई रस-मई मञ्जुल काँती।
सोहत सुन्दर चहुँ सजल, सरिता पोखर ताल।
लोल-लोल तहँ अति अमल, दादुर बोल रसाल।
छटा छूई परै॥ ४ ॥

अलबेली कहुँ बेलि द्रुमन सों लिपटि सुहाई।
धोये-धोये पातन की अनुपम कमनाई।
चातक सुक कोयल ललित बोलत मधुरे बोल।
कूकि-कूकि केकी कलित, कुञ्जन करत कलोल।
निरखि घन की छटा ॥ ५ ॥

इन्द्रधनुष औ इन्द्र-बधूटिन की सुचि सोभा।
को जग जनम्यो मनुज जासु मन निरखि न लोभा।
प्रिय पावन पावस लहरि, लहलहात चहुँ ओर।
छाई छबि छिति पै छहरि ताको ओर न छोर
लसै मन-मोहनी ॥ ६ ॥

कहूँ बालिका-पुञ्ज कुञ्ज लखि परियत पावन।
सुख-सरसावन सरल सुहावन हिय-हरसावन॥
कोकिल-कण्ठ-लजावनी, मन-भावनी अपार।
भ्रातृ-प्रेम सरसावनी, राजत मञ्जु मल्हार
हिंडोलनि झूलतीं॥ ७॥

बालवृन्द हरसत उर दरसत चहुँ चलि आवैं।
मधुर-मधुर मुसकाइ रहस-बतियाँ बतरावैं।
तरुवर डार हलावहीं, 'धौरी' 'धूमरि' टेरि।
सुन्दर राग अलापहीं, भौंरा चकई फेरि।
विविध क्रीड़ा करैं॥ ८॥

लखि यह सुखमा-जाल लाल निज बिन नँदरानी।
हरिसुधि उमड़ी घुमड़ी तन उर अति अकुलानी॥
सुधि-बुधि तजि माथौ पकरि, करि-करि सोच अपार।
दृग-जल मिस मानहुँ निकरि वही विरह की धार
कृष्ण-रटना लगी॥ ९॥

कृष्ण-विरह की बेलि नई ता उर हरिआई।
सोचन अश्रु-विमोचन दोउ दल-बल अधिकाई॥
पाइ प्रेम-रस बढ़ि गई, तन-तरु लिपटी धाइ।
फैलि फूटि चहुँधा छई, बिथा न बरनी जाइ
अकथ ताकी कथा॥ १०॥

—सत्यनारायण कविरत्न

छिन्नमस्ता आवाहन

(१)

अस्ताहार्य सी हो लील लेती दनुजों का तेज
स्वप्न में न शत्रु से कभी भी हुई ध्वस्ता तू ;
संभा-सी . अँधेरी फैल जाती ब्रह्ममण्डल में
झंझा-सी प्रमत्ता जब होती खड्ग-हस्ता तू।
थर-थर काँपते हैं दुष्ट सुनते ही नाम तेरा
ऐसी प्रलयंकरी त्रिलोक में प्रशस्ता तू ;
खंड-खंड कर दे अखंड पातकों के पुञ्ज
मुझको बचा ले आज मातु छिन्नमस्ता तू ॥

(२)

तेरा लवणाब्धि-सा विलोकते ही दिव्य रूप
होतीं कंकनी भी डंकनी भी देव-दारा-सी ;
अखिल अरातियों के होते शतधा है शीश
कढ़ती दृगों से जब ज्वालामाल आरा-सी ।
पीती स्वकबन्ध का ही रक्त क्रुद्ध होके जब
हिलती पिघल के वसुन्धरा भी पारा-सी ;
भस्मीभूत होते धरती के महाभूधर भी
आती जब तू है बड़वानल के धारा-सी ॥

(३)

तेरे बल-विक्रम-पराक्रम के सामने तो
मण्डलेश्वरों के भी सुयश आज धोगये ;
तेरी श्वेत कीर्ति में पयाब्धि-शंकराद्रि-सोम
विश्वसृज-वासव के बाहन भी खोगये।

संगर में नेक उठते ही करबाल टूट
 शाल से सकल शत्रुओं के वृन्द सोगये ;
तेरे तेज-पुंज से तड़क यों दिशाएँ गईं
 शंकित हो शक्र के सहस्र नेत्र होगये ॥

(४)

भक्षिणी अधर्म की तू धर्म की सुरक्षिणी तू
 मर्म की विलक्षणी तू कर्म की करालिनी ;
सिद्धि की स्वरूपिणी तू जय की प्रपूरिणी तू
 तरल त्रिरूपिणी तू सर्वशक्तिशालिनी ।
क्रोधिनी तू बोधनी तू शोधिनी तू रोधिनी तू
 संशय-विमोचनी तू संतति की पालिनी ;
खंड-मुंड-धारिणी तू दुःख-सिंधु-तारिणी तू
 संकट-निवारिणी तू मातु दुष्ट-घालिनी ॥

(५)

होती जब तेरी बंक भृकुटी भयंकरी तो
 मृत्यु का भी चंग-सा कपाल कट जाता है ;
कुंठित कृतान्त का भी होता है कुठार देख
 तेरा रूप तेज वह्नि का भी घट जाता है ।
असि की चमक में तो शशि भी दरक जाता
 कोसों रथ भानु का भी पीछे हट जाता है ;
पद के प्रहार से कुगोल भी धसक जाता
 खसक खगोल भी तुरन्त फट जाता है ॥

(६)

तेरे सामने ही करते हैं रक्तपात जो कि
 ऐसे हिंसकों को हठियों को तू हटक दे ;

दीन जड़भरत समान जड़-जन्तुओं के
प्राण के बचाने को कृपाण तू झटक दे।
प्रकट-प्रकट आज विकट स्वरूप में तू
झपट धरा में पापियों को तू पटक दे;
छाँटि छल-छद्म-छिद्र क्षुद्र छलियों के आज
कुटिल कुचालियों के काट तू कटक दे॥

—"उमेश"

———

ऋतु-वर्णन

शरद

(क्वार-कार्तिक)

कास चीर तन धरे कमल सम बदन दिखावति ।
मद-बस कूजत हंस, मनहु घुँघुरून बजावति ॥
पके कछुक जो धान, सोई तन गोर जनावति ।
मन-मोहत यह सरद, सुघड़ दुलहिन-सी आवति ॥
चन्द्रकिरन सम रैन, कास फूलन महि सारी ।
कोकाबेलिन ताल, हंस यूथन सरवारी ॥
फूल भार सन नवत, सप्तछद सन बन छोरा ।
रुचिर चमेलिन बाग सेत लखियत चहुँ ओरा ॥
नाचत चंचल मीन हिलत करधनी बनाये ।
लसत हंस उपकंठ हार जनु गर लटकाये ॥
भरे रेत शुचि कूल, श्रोणि की छबि परकासी ।
मन्द-मन्द अब चलैं सरित मदभरि प्रमदासी ॥
शंख नाल से सेत कतहुँ चाँदी के रंगा ।
हलुक होइ बिन बारि होत घन छन-छन भङ्गा ॥
उड़त पौन के साथ मेघ, सन नभ अब छाजत ।
नृप समान चहुँ ओर चँवर डोलत से राजत ॥
धौरे नील सुरंग अकाश अब लगै सुहाई ।
दुपहरिया के खिलत भूमि छाई अरुनाई ॥
पकत धानि की बालि खेत सब लखियत गोरे ।
लखि तरुनन के चित्त होय अब उमँग न थोरे ॥

डोलन मन्द बयार डार फुनगी कछु झूमत।
छके किये मधुपान भ्रमर फूलन जनु चूमत॥
खिले फूल के गुच्छ लसत पल्लव कछु सोहै।
शरद माहिं कचनार लाल सबकर मन मोहै॥
भूषन पहिरि जड़ाय खिलत नभ महँ जब तारे।
छटत मेघ अति बिमल चंद निज बदन उघारे॥
लसत बिमल अँग अंग जीन्ह की उज्ज्वल सारी।
बाढ़त दिन-दिन रैन मनहुँ श्यामा कोउ नारी॥
उठत लहर हारील चोंच सन फारत नीरा।
बत्तक सारस यूथ वैठि नाचत मिलि तीरा॥
चक्रवाक उत चलत हंस कूजत मदभरि इत।
परी कमल की धूरि सरित मोहै सबकर चित॥

—अवधवासी सीताराम

वसन्त

वाटिका विपिन लागे छावन रँगीली छटा,
छिति से सिसिर को कसाला भयो न्यारो है।
कूजन किलोल सों लगे हैं कुल पंछिन के,
'पूरन' समीरन सुगन्ध को पसारो है।
लागत वसन्त नव संत-मन जागो मैन,
दैन दुख लागो बिरहीन बरियारो है।
सुमन-निकुंजन मैं, कंजन के पुंजन मैं,
गुंजत मलिन्दन को बृंद मतवारो है॥

भयो ना बिकास है सुबास को सुपास नहीं,
असन प्रकास भानु जो पै बिस्तारो है।
रज नाहीं, रंग नाहीं, मधु को प्रसंग नाहीं,
होत ना तरल लै तरंग को सहारो है।
तापै भौंर रीझो, मन खीझो जात देखे दसा,
'पूरन' ये कैसो हाय नेम अनुसारो है॥
फूल कंज-वृंद मकरंद को विहाय अर—
बिंद की कली में जो मलिंद मतवारो है।
कुञ्जन में सघन तमालन के पुञ्जन में,
करत प्रवेश ना दिनेस उजियारो है॥
प्यारी सुकुमारी स्यामा साज सजे ठाढ़ी तहाँ,
नीलमनि मालन को जाल छबिवारो है।
छिटिके बदन चन्द कुन्तल अनन्द स्याम,
स्याम रंग पागीं नाम स्यामा तासु प्यारो है॥
'पूरन' सुअंगन पै सौरभ प्रसंग पाय,
झूमै स्याम भौंरन को झौंर मतवारो है।
कूजनि विहंगनि की घंटिका बजै सो मंजु,
ओसकन सोई मद झरत निहारो है॥
'पूरन' प्रसूनन की सुरँग अवारी सजी,
भृङ्गन की भीर सो सरीर वरियारो है।
बैठो ऋतुराज तापै जग की करत सैर,
सौरभ अतंक जग माहिं बिस्तारो है॥
धावत महावत अनंग के इसारे वीर,
सुरभि समीर ये मतंग मतवारो है।

तू ही है द्रुमन-वृन्द सुमन अनन्द तू ही,
रङ्गन की सोभा तू ही भृङ्गन की भीर है।
रुचिर बिहंग तू ही कूजनि अभंग तू ही,
ऋतु-रस-रंग तू ही रसिक अमीर है॥
जगत बसन्तवारी सुखमा अनन्त तू ही,
तू ही निसिकन्त तू ही दम्पति अधीर है।
'पूरन' अनन्द तू ही सुचिर सुगन्ध तू ही,
सीतल सुमन्द तू ही सुखद समीर है।
चन्दन वलित चारु देखियत सुण्ड दण्ड,
भृङ्गन की जौन रज रंजित पतीर है।
सोहत स्रवत हालैं पल्लव बिसाल जौन,
मंजुल सुगन्धित स्रवत मदनीर है॥
सेत कुन्द पन्त एकदन्त की अनन्त सोभा,
मंजरी मुकुट अंग फूलन को भीर है।
'पूरन' निकुञ्ज-रूपी कुञ्जरबदन जू को,
वंदत वसन्त लीन्हें बिजन समीर है॥
—देवीप्रसाद 'पूर्ण'

निदाघी मध्याह्न

(१)

सोई मध्याह्न-वेला प्रखर अति हुई सूर्य की रश्मि-माला।
पृथ्वी में है अहा! क्या बरस यह रही व्योम से अग्नि-ज्वाला॥
ऊष्मा से भूमि की हो पवन अब बड़ा तप्त सन्तापकारी।
जीवों को दग्ध-सा है अहह! कर रहा दे उन्हें दुःख भारी॥

(२)

छाया चारों दिशा में रज-दल, वसुधा की हुई दिप्ति हीना।
तालों के नीर ठण्डे अब गरम हुए पद्म-माला मलीना ॥
पेड़ों की डाल, बल्ली, किसलय, कलिका कुञ्ज शोभायमान।
होके सन्तप्त हा! हा! दिनकर-कर से हो रहीं सर्व म्लान ॥

(३)

प्यासे हो, चंचु खोले, कलरव तज के भीत से मौन धारे।
बैठे हैं कोटरों में खगगण तरु के ताप-सन्ताप मारे ॥
होके हाहा शुष्क कण्ठ व्यथित विपिन के जन्तु दग्धा मही में।
छाया में हाँपते जा, तज तृण चरना शान्ति पाके न जी में ॥

(४)

खेतों से क्लान्त होके कृषकगण सभी गेह को लौट आये।
पत्नी, कन्या, सुशीला, सुत मिल सब से क्लेश सारे मिटाये ॥
ग्रामों में वृक्ष नीचे अति सुखकर है बालकों का जमाव।
क्रीड़ा के रङ्ग में जो प्रकटित करते मोद के भूरि भाव ॥

(५)

ले, देखो, काष्ठ-बोझा निज-निज सर पै काष्ठ-जीवी विचारे।
जाते हैं गीत गाते भवन, न गिन के क्लान्ति दुःखादि सारे ॥
मांसाहारी अनारी पशु-बध जिनको खेल है मोद सार।
जाते हैं मोद से वे नर सर, वन को ढूँढ़ने को शिकार ॥

(६)

ग्रामों के प्रान्त में हैं तरुतल करते ढोर बैठे जुगाली।
बैठे ह्वाँ ग्वाल-पत्नी ध्वनि मुदित करैं बाँसुरी की निराली ॥

भूखा प्यासा अकेला पथिक तपन के ताप से क्लान्त होके ।
छाया में है वृक्ष की है गमनकर अहो बैठता श्रान्त होके ॥

(७)

वृक्षों को, जन्तुओं को, सकल जगत को ताप दे दुःखदायी
लेते मध्याह्न में हैं दिनकर कर जो खींच के नीर भाई !
होते प्रत्यूष-वेला अगणित हिम के बिन्दु भू-सिञ्चनार्थ ।
देता है सूर्य भू को खग मृग जग का मित्र होके यथार्थ ॥

—लोचनप्रसाद पाण्डेय

वर्षा-वर्णन

(बाल्मीकि-रामायण के आधार पर)

दोहा

धूरि दबी, गरमी मिटी, चल्यौ सुसीतल पौन,
　　रुकी चढ़ाई नृपन की फिरे विदेसी भौन ।
चकवा सों चकई मिली, मानस चले मराल,
　　चल्यो जात नहिं पन्थ में, बूँद परै सब काल ।
बिखरे बादर गगन महँ, कहुँ तम कहुँ परकास,
　　सोहै थिर सागर सरिस, कहुँ गिरि-ओट अकास ।
बहत बेग सों कदम लै, नदियन गँदलो नीर,
　　बोलत हरखित मोरगन, बैठे दोऊ तीर ।
लोग रसीले खात है, जामुन अलि सम स्यामः
　　टपकत भू पै वायु सों, पाके बहुविधि आम ।

बकमाला दामिनि सहित, ऊँचे सैल-समान ;
　　गरजत कारे मेघ इमि, जिमि गयंद बलवान।
घास बढ़ी, केकी नचे, मेघ चुके झरि लाय ;
　　संध्या को या बिपिन की, सोभा अधिक लखाय।
जलधर जल-धारन किये, बकदल सों सरसात ;
　　ऊँचे परवत-सृंग पै, गरजत ठहरत जात।
बक-पाँती घन-चाह सों, उड़ती परम सुहाइ ;
　　पुण्डरीक-माला मनहुँ, घन-हित दई बनाइ।
बीरबहूटी घास महँ, सोभा देत अपार ;
　　मनहुँ भूमि दुलही नई, बैठी चूनरि धार।
फूलीं डार कदंब की, बच्छ गये ढिंग गाइ ;
　　कानन नाचत मोरगन, तृन सों भूमि सुहाइ।
घन बरसत, सरिता बहति, गरजत मत्त गयंद ;
　　वन सोहै, नाचैं सिखी, चुप हैं बानरबृन्द।
सूंघि केतकी गंध गज, मत्त होय हरखात ;
　　वन-झरना की सबद सुनि, मोरन सँग चिल्लात।
लटकि कदम के फूल अलि, मस्त पिएँ मधु प्रात ;
　　पै बूँदन की चोट सों, मस्ती सब झरि जात।
कैला-सो कारौ बड़ा, फल रस भरो सुहाइ ;
　　मानों जामुन-डार पै, बैठे मधुकर आइ।
सोभित बिज्जु धुजान सों, गरजत बादर घोर ;
　　मानो रन उत्साह सों, कपि धावत कर सोर।
घन-रव करि-रव जानिके, मतवारो गजराइ ;
　　लड़न चल्यौ, पीछे फिर्यो, नहिं जब कोउ लखाइ।

कहुँ गूँजत हैं भौंरदल, कहुँ नाचत हैं मोर :
कहुँ झूमत करिराज वन, सोभित भाँति करोर।
अरजुन, रंभा, कदम-तरु, सोभित साल, रसाल :
पूरित है मधु, बारि सों, वन धरती इहि काल।
नाचत, बोलत मस्त अति, ह्वै मयूर हरखाइ :
सुरापान के भवन-सो, कानन परत लखाइ।
मोती-सो निरमल सलिल, गिरत पात महँ आइ :
भींगे प्यासे बिहँगगन, पीवत मोद बढ़ाइ।
अलिगन बीन बजावहीं, बानर गावैं गीत :
मेघ मनहुँ मिरदंग लै, करत विपिन संगीत।
कबहुँ बैठि तरुवर-सिखर, कवहुँ नाचि करि सोर :
मनहुँ गान बन महँ करत, बड़ी पूँछ के मोर।
घन-रव सुनि कपि उठत जो, रहे देर लौं सोइ :
करत नाद बहु रूप के बूँदनि घायल होइ।
एक तीर सों लपटिकै, दूजो तीर बिहाइ :
निज पिय सागर सों मिलन, नदी चली इतराइ।
जल सों पूरे नील वन, सटे एक-सों-एक :
झुलसे मनौं दवागि के, गिरिवर जुरे अनेक।
बीरवहूटी रेंगती, कूकत माते मोर :
फैली गन्ध कदंब की, गज घूमत चहुँ ओर।
धोये बारिद-बूँद सों, कमलन को तजि देत :
केसर सहित कदंब के, मधु को मधुकर लेत।
मुदित गवेंद्र, गजेंद्र मद-माते वली मृगेन्द्र :
रम्य नगेन्द्र नरेन्द्र चुप, धन सों सुखी सुरेन्द्र।

घन बरसाऊ गरजते रहे गगन महँ छाइ ;
        नदी, बावली, कूप महिं भरत बारि बरसाइ।
बूँद परति अति वेग सों, वायु चलत झकझोर ;
        पथ छाइति, बोरति तटन, नदी बहत अतिजोर।
दयो इंद्र लायो पवन घन गागर में तोय ;
        ह्वै अभिसिक्त नगेन्द्रवर नृप-सम सोभित होय।
तारा, भानु न दीखते, छाये मेघ अकास ;
        भूमि तृप्त, तम लिप्त है, होत न कहूँ प्रकास।
मोतिन की माला-सरिस, झरना बड़े सुहात ;
        तासों धोए गिरि-सिखर, सुन्दर अधिक लखात।

—जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

प्रकृति-छटा

मयंक-महिमा

चतुर चकोर चारु लोचन कर अचल देखता चाह भरे।
उसे उच्चतर प्रेम दिखाता भाता धीरज धीर धरे॥
निज प्रिय-मुख-मंडल-सुमाधुरी मंजु अमृत-रस पीता है।
औरों पर आँखें न उठाता देख उसी को जीता है॥
अतिशय अनुपम प्रेम-पात्र भी पाया है उसने ऐसा।
इस विरंचि-रचना विशाल में और नहीं कोई जैसा॥
वाह-वाह क्या शोभा है जो कही न कछु भी है जाती।
ज्यों-ज्यों उसे देखिए, त्यों-त्यों नई छटा है छहराती॥
मेचक चिकुर-पुञ्ज रजनी के मध्य मंजु मन भाता है।
रमा-रुचिर विधु-वदन चाँदनी मिस मानों मुसकाता है।
जिसका चारु चकोर चक्रधर चकित लालची लोचन से—
निहारता, हारता सदा मन रहता है भोलेपन से॥
अथवा, गगन-सरोवर, नील-सलिल-पूरित पर फूला है।
सित सहस्रदल अमल कमल बनकर मन मधुकर भूला है॥
जिसकी केसर सरस कौमुदी जग कमनीय बनाती है।
शुभ सुगंध-सम्मिलित सुधा मकरंद-विन्दु बरसाती है॥
या यह अम्बर-उदधि बीच उतराया, क्या मन भाया है।
उज्ज्वल उपल महान खंड मंडलाकार छवि-छाया है॥
तिमिर मत्त मातंग मार या सिंह उसी पर बैठा है।
मरीचिमाली सटा छटा छहराता गर्वित ऐंठा है॥

अथवा क्या आकाश-माठ में मथित हुआ उतराया है।
मञ्जुल मक्खन-पिंड स्वच्छ सबके मनको ललचाया है॥
प्रकृति-देवि-छबि-दर्शक दर्पण गोल अलौकिक भारी है।
या यह पूरित प्रभा दिखाता भाता जगती सारी है॥
रमनारम्य व्योम-उद्यान बीच या विकसित भाया है।
सुन्दर सूर्यमुखी कमनीय कुसुम क्या यह रँग लाया है॥
अथवा आदि अखण्ड पिण्ड ब्रह्मांड मनोहर दिखलाता।
फिर भी है जगदीश आज निज माया-महिमा प्रगटाता॥
या यह थाल रजत मन्मथ महीप का जिला कराया है।
रस शृङ्गार-सार जिसमें भर जग को सरस बनाया है॥
या कलधौत कलश पूरित पीयूष धरा सा भाता है।
या भारत हृदयेश सुयश सम्पुट-नभ पहुँच सुहाता है॥
अथवा किसी देव-शिशु ने क्या गोली गुड़ी उड़ाई है।
प्रभामयी जगदीठ खींचकर जिसने पास बुलाई है॥

—बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

———

चन्द्रोदय

[बिम्बार्द्ध]

परम रम्य नीलाभ गगनतल पै यह को है ?
चितवत ही चख चपल अचल करि जो मन मोहै ॥
अहै कहा यह राहु-सीस को काटनहारो ।
चमचमात चक्रार्द्ध सुमन-गन को रखवारो ॥
कै अम्बर को अमल धवल व्यापक जग माहीं !
सदा शब्दमय विजय-शङ्ख को जानत नाहीं ॥
कै यह अभ्र पयोदधि की सुतही अति प्यारी ।
तारा-मुक्तावलि की जो उपजावनहारी ॥
कैधों रजत पहार तुषार-सन्यो मनभावन ।
मीनकेत को मीनकेत कै कलुष-नसावन ॥
कै बाराह बिशाल वदन की डाढ़ माहिं इक ।
वक्र दन्त द्युतिमंत अन्तकारक तम दस दिक ॥
दवी कहा ? हिम-शिला मध्य अमृत की पोखी ।
सुखद सराहन जोग मुग्ध मन मीन अनोखी ॥
कै तम-कुञ्जर दमन हेत नभ-वीरमहावत ।
लैकर अमल अलौकिक अंकुश भूमत आवत ॥
किधौं हास्यरस के तारे की है यह तारी ।
कै छल-बल की सकल कलाधारी कल भारी ॥
सोलह कला-प्रवीन कोऊ नागर नट की वर ।
दीख परत इक कला अनोखी सुमन मनोहर ॥

प्रकृति सती को सुरस हास्य कैधों मन मोहै ।
किधौं हास्यरस रस-सिंगार उरधरि अति सोहै ॥
कै कामागममत्त मनुजजन को बैतरनी ।
कैधौं बिरहिन-मानवतिन की मान कतरनी ॥
झलकत वाम सुभाव किधौं बामाउरचारी ।
कै मनोज की अहै अनोखी कुटिल कटारी ॥
कै सन्ध्या-वर-वधू-कपोल नखच्छत पूरो ।
कै अनन्त मन्दिर को राजत कुटिल कँगूरो ॥
शीत रश्मियुत पुष्पबाण की धनु छवि छाजै ।
कै कुटिलन के कुटिल हृदय को हृदय बिराजै ॥
ओंकार कैधों रति-पति-आगम को निरुपम ।
कै यह बरत मसाल काल को नासन को तम ॥
कैधों विधिकृत कर्म-रेख की बलित बिकारी ।
कै कोऊ मात्रा व्याकरननि की अति प्यारी ॥
किधौं शेषफन एक धरातल-ऊपर आयो ।
कै कोऊ मुनिवर को चमकत भाल सुहायो ॥
कै शिशुमार चक्र को दीसत धुरी अधूरी ।
किधौं व्योम-गंगा की झलकत रेती भूरी ॥
किधौं विष्णु-पद-नख की कछुक छटा, छबि छाजत ।
कै कलिंदजा-मध्य रजतमय नौका राजत ॥
यामें झलकत कहा श्यामता ? सोई कहिये ।
ठाढ़े करत सलाह मलाह चलन कित चहिये ॥
चन्द्रचूर को चन्द्र चूर ह्वै अधर पर्‌यो है ।
कै सुखमा-समूह को बेरा आनि अर्‌यो है ॥

कै रजनी को राजत है सुहाग-फल पूरो।
किधौं सुधाकर उदित भयो है आज अधूरो ॥
कैधौं जनम्यो अबै जलधि-उर तें यह बालक।
कै शशि-शेखर-भाल तिलक रोवन कुल पालक ॥
गरल सहोदर की ज्वाला तें जरि उर माहीं।
शम्भु शीशहू चढ़ि याको नेकहुँ सुख नाहीं ॥
छुद्र जीवहू कहुँ ऊँचे आसन थिर होहीं ?
याही ते यह भटकत डोलत है चहुँ कोहीं ॥
सीतल करन हृदय सीतल मारुत चहुँ जोवत।
बिरहिन के मानस बरजोरी बिप बहु बोवत ॥

—किशोरीलाल गोस्वामी

चमेली

सुन्दरता की रूपराशि तुम दयालुता की खान चमेली !
तुमसी कन्याएँ भारत को कब देगा भगवान चमेली ॥
चहक रहे खग-वृन्द वनों में अब न रही है रात चमेली।
अमल कमल कुसुमित होते हैं देखो हुआ प्रभात चमेली ॥
प्रेम-मग्न प्रेमीजन देखो करें प्रभाती-गान चमेली।
जिसने तुमसा वृक्ष लगाया कर माली का ध्यान चमेली ॥
जग-यात्रा में सहने होंगे कभी-कभी दुखभार चमेली।
काट-छाँट से मत घबराना यह भी उसका प्यार चमेली ॥
छिन्न-भिन्न डालों का होना अपने ही हित जान चमेली।
हरे-हरे पत्ते निकलेंगे सुमनों के सामान चमेली ॥

भ्रमर-भीर गुञ्जार करेगी, तुमसे हास-बिलास चमेली।
दिग-दिगन्त सुरभित होवेगा पाकर सुखद सुवास चमेली॥
अटल नियम को भूल न जाना जग में सबका नाश चमेली।
अस्त अंशुमाली भी होता घूम अखिल आकाश, चमेली॥
नहीं रहेगा मूल न शाखा नहीं मनोहर फूल चमेली।
निराकार से मिलकर होना प्रियतम-पद की धूल चमेली॥

—मन्नन द्विवेदी, गजपुरी

चाँदनी

खिल रही है आज कैसी भूमितल पर चाँदनी।
खोजती फिरती है किसको आज घर-घर चाँदनी।
घन-घटा घूँघट उठा मुसकाई है कुछ ऋतु शरद।
मारी-मारी फिरती है इस हेतु दर-दर चाँदनी!
रात की तो बात क्या, दिन में भी बनकर कुंद काँस।
छाई रहती है बराबर भूमितल पर चाँदनी॥
सेत सारी-युक्त प्यारी की छटा के सामने।
जँचती है ज्यों फूल के आगे हो पीतर चाँदनी।
स्वच्छता मेरे हृदय की देख लेगी क्या कभी।
सत्य कहता हूँ कि कँप जायेगी थर-थर चाँदनी!
नाचने लगते हैं मन आनन्दियों के मोद से।
मानुषी मनको बना देती है वन्दर चाँदनी!
भाव भरती है अनूठे मन के कवियों में अनेक।
इनके हित हो जाती है जोगी मछंदर चाँदनी!

वह किसी की माधुरी मुसकान की मनहर छटा—
'दीन' को सुमिरन करा देती है अकसर चाँदनी।
—भगवानदीन 'दीन'

आमन्त्रण

दृग के प्रतिरूप सरोज हमारे, उन्हें जग-ज्योति जगाती जहाँ,
जल-बीच कलंब-करंबित कूल से, दूर छटा छहराती जहाँ।
घन अञ्जनवर्ण खड़े, तृणजाल की झाईं पड़ी दरसाती जहाँ;
बिखरे बक के निखरे सित पंख, विलोक बकी बिक जाती जहाँ॥१॥
द्रुम-अङ्कित, दूब-भरी, जलखण्ड, जड़ी धरती छवि छाती जहाँ;
हर हीरक-हेम-मरक्त प्रभा, ढल, चन्द्रकला है चढ़ाती जहाँ।
हँसती मृदु मूर्ति कलाधर की, कुमुदों के कलाप खिलाती जहाँ,
घन-चित्रित अम्बर अंक धरे, सुषमा सरसी सरसाती जहाँ॥२॥
निधि खोल किसानों के धूल सने, श्रम का फल भूमि बिछाती जहाँ;
चुनके, कुछ चोंच चला करके, चिड़िया निज भाग बँटाती जहाँ!
कगरों पर काँस की फैली हुई, धवली अवली लहराती जहाँ;
मिल गोपोंकी टोली कछारके बीच, है गाती औ गाय चराती जहाँ॥३॥
जननी-धरणी निज अंक लिये, बहु कीट-पतङ्ग खेलाती जहाँ:
ममता से भरी हरी बाँह की छाह, पसारके नीड़ बसाती जहाँ।
मृदुवाणी, मनोहर वर्ण अनेक, लगाकर पंख उड़ाती जहाँ;
उजली कँकरीली तटीमें धँसी, तनु धार लटी बल खाती जहाँ॥४॥
दल-राशि उठी खरे आतप में, हिल चञ्चल चौंध मचाती जहाँ;
उस एक हरे रंग में हलकी, गहरी लहरी पड़ जाती जहाँ।

कल कुर्बुरता नभ की प्रतिबिम्बित, खंजन में मनभाती जहाँ,
कविता वह ! हाथ उठाये हुए, चलिये कविवृन्द ! बुलाती वहाँ॥५॥

—रामचन्द्र शुक्ल

प्राकृतिक सौन्दर्य

हिममय परबत पर परति, दिनकर-प्रभा प्रभात।
प्रकृति-परी के उर पर्‌यो, हेम-हार लहरात॥
नखत-मुकत आँगन-गगन, भरति प्रकृति-मा रात।
बाल हंस चुपचाप चट चमक चोंच चुगि जात॥
जनु जु रात बिछुरन रहे नलिनी-तिय-मुख छाइ।
वेई ओस-आँसू करनि पोंछत रवि-पिय आइ॥
दिन-नायक ज्यों-ज्यों बढ़त कर-अनुराग पसारि।
त्यों-त्यों लजि सिमटति, हटति निसि-नवनारि निहारि॥
लरिकाईं-ऊषा दुरी, झलक्यो जोबन-प्रात।
छई नई छबि-रवि-प्रभा नारि-प्रकृति के गात॥
लखि जगपंथी अति थकित संझा-बाँह पसारि।
तम सराय में दै रही, छाँह छपा-भटियारि॥
जटित सितारन-छंद अंगनि अंबर झलमलत।
चली जाति गति मंद, सजनि-रजनि मुखचंद-दुति॥

—दुलारेलाल भार्गव

अन्तर्जगत से

शीतलता हिमकर किरनों में;
जीवन मलय पवन में;
मैं अविराम नृत्य, लहरों में
आकुलता हूँ घन में।
छिड़ता है संगीत गगन में—
सिन्धु-किनारे मेरा;
दिन-मणि के उस अलख लोक का—
मैं हूँ शान्त सवेरा!!

अन्तर्जग की करुण कहानी—
कहना मुझको आता;
यह बहिरंग जगत मेरी—
आँखों को तनिक न भाता!
वह अनादि व्यापक प्रकाश नित,
रहता मेरे मन में;
उसकी केवल एक किरण—
करती प्रकाश जीवन में!

आज बज उठी तेरे करसे—
वीणा मेरे मन की;
आशातीत अतिथि! कैसी—
लीला तेरे इस क्षण की?

जागृत तन्त्री हुई अचानक—
वह चिरदिन की सोई!
सुला सकेगा क्या उसको फिर—
इस जगती में कोई!!

जब असीम सौंदर्य्य जगत का—
स्मृति हो—मेरे मन में;
अन्तर्जग की विकसित सुषमा,
निरखूँ तेरे तन में!!

जुटते और टूटते जगके—
नाते स्वप्न-सरीखे;
नहीं चाहता मैं उनको, वे—
लगते मुझको तीखे!

शीतल स्निग्ध प्रकाश—ज्ञान का—
तेज-रहित जब होता;
विश्व-सम्मिलन-सुख का रुकता—
जब जगती में 'स्रोता'
इस अत्यावर्तन से होता—
कुछ भी क्षोभ न मुझको;
मेरे हृदय! देखता हूँ मैं—
लेकर 'करमें' तुझको!!

तेरी धुन में मस्त अश्रु-कण—
निकले दृगसे जितने :
कहीं ठहरते तो, बन जाते—
कोहनूर वे कितने !!

वशीभूत करने का इस उन्मत्त—
हृदय को मेरे,
मोहन-मन्त्र दिया—विधि ने क्या—
इन नयनों को तेरे ?
निकल निकलकर सहसा इनसे—
मधुर तेज की किरनें :
मेरे जगके तिमिर-सिन्धु में—
आकर लगतीं तिरने !!

—लक्ष्मीनारायण मिश्र

विश्व-छवि

बम्बई का समुद्र-तट

[सायंकालिक दृश्य]

सायङ्काल हवा समुद्रतट की नैरोग्यकारी महा,
प्रायः शिक्षित सभ्य लोग, नित ही आते इसी से वहाँ।
बैठे हास्य-विनोद मोद करते, सानन्द वे दो घड़ी,
सो शोभा उस दृश्य की हृदय को है तृप्ति देती बड़ी ॥ १ ॥
सन्ध्या को गिरतीं दिनेश-करकी नोकें ललाई सनी,
होती है तब दिव्य वारिनिधि की शोभा मनोमोहिनी।
नीचे से जब बार-बार उठती ऊँची तरंगावली,
आती है बढ़के सुदूर फिर भी जाती वहाँ ही चली ॥ २ ॥
छोटे और बड़े जहाज जल में देखो वहाँ वे खड़े,
सो भी दृश्य विचित्र, किन्तु हमको वे हानिकारी बड़े।
ले जाते वर-वस्तु देश भर की जानें कहाँ की कहाँ,
लाते केवल ऊपरी चटक की चीजें विदेशी यहाँ ॥ ३ ॥
हैं उद्यान महामनोहर जहाँ विख्यात वृक्षावली,
फूली है कुसुमावली नव-नवा सौरभ्य आती चली।
बैठी स्वागत-सी जहाँ कर रही प्यारी बिहगावली,
चित्ताकर्षक खूब वारिनिधि की आनन्ददायी स्थली ॥ ४ ॥
आते हैं दिन के थके जन सदा सन्ध्या हुए पै यहीं,
प्यारी मन्द सुगंध-शीतल हवा अन्यत्र पाते नहीं।
देके स्पर्श समीर खूब करती आतिथ्य-सेवा तथा,
खोती है श्रम सर्व और उनकी सारी मिटाती व्यथा ॥ ५ ॥

मेमैं मंजुल पारसीक नवला नारी दिखातीं अदा,
आती हैं सब सभ्य भव्य महिला प्रायः सदा सर्वदा।
वे स्वाधीन सभी समाज निज से स्वातंत्र्य पाई हुई,
आतीं जो मरुवासिनी वह कथा है सर्वथा ही नयी ॥६॥

सुभग-सदन-पंक्ति प्रान्त में हैं दिखाती,
घर-घर सुखमा की बाटिका है बढ़ाती।
विकसित कुसुमाली खूब सर्वत्र छायी,
सुरुचिर हरियाली मालियों की लगायी ॥७॥
मदकल मतवाली जो वहाँ कामिनी हैं,
अनुपम छविवाली रूपशाली बड़ी हैं।
दृग-पथ करने से चित्त आती यही हैं,
सुरपुर-वनिता ही क्या यहाँ आ गयी हैं ॥८॥
शोभा समुद्रतट की अवलोकनीय,
पाता प्रमोद मन देख उसे मदीय।
यथार्थ वर्णन न हो सकता तदीय,
है दृश्य केवल अहो! वह दर्शनीय ॥९॥

—कन्हैयालाल पोद्दार

स्मृति

कितनी निर्जन रजनी में
तारों के दीप जलाये,
स्वर्गङ्गा की धारा में,
मिलने की भेंट चढ़ाये ॥

शशि-मुख पर घूँघट डाले
अञ्जल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आये!

मैं अपलक इन नयनों से
निरखा करता उस छविको:
प्रतिभा-डाली भरलाता,
कर देता दान सुकवि को॥

घन में सुन्दर विजलीसी,
विजलीमें चपल चमकसी।
आँखों में काली पुतली,
पुतली में श्याम-झलकसी।

प्रतिमा में सजीवता-सी,
बसगई सुछवि आँखों में,
थी एक लकीर हृदय में
जो अलग रही लाखों में।

तुम रूप-रूप थे केवल,
या हृदय रहा भी तुमको।
जड़ता की सब माया थी,
चैतन्य समझकर हमको।

विपप्याला जो मैं पी लूँ,
वह मदिरा हो जीवन में।
सौन्दर्य्य-पलक-प्याले का,
क्यों प्रेम बना है मन में।

छलना थी फिरभी, मेरा,
उसमें विश्वास घना था।
उस माया की छाया में,
कुछ सच्चा स्वयं बना था॥

कामना सिन्धु लहराता
छविपूर्णनभा थी छाई,
रत्नाकर बनी चमकती,
मेरे शशि की परछाईं।

लहरों में प्यास भरी थी,
थे भँवर-पात्र भी खाली।
मानस का सब रस पीकर,
लुढ़का दी तुमने प्याली!

सुख-आहत-शान्त-उमङ्गें
बेगार साँस ढोने में,
यह हृदय समाधि बना है,
रोती करुणा कोने में!

अभिलाषाओं की करवट,
फिर सुप्तव्यथा का जगना।
सुख का सपना हो जाना,
भींगी पलकों का लगना॥

इस विकल वेदना को ले,
किसने सुख को ललकारा।
वह एक अबोध अकिञ्चन,
बेसुध चैतन्य हमारा!

उस पार कहाँ फिर जाऊँ,
तन के मलीन अञ्चल में।
जीवन का लोभ न है वह,
वेदना छद्म के छल में।

वेदना बिकर फिर आई—
मेरी चौदहों भुवन में,
सुख कहीं न दिया दिखाई,
विश्राम कहाँ जीवन में ?

उच्छ्वास और आँसू में
विश्राम थका सोता है,
रोई आँखों में निद्रा—
बनकर, सपना सोता है ॥

—जयशंकर 'प्रसाद'

श्मशान

सैकत-शय्या एक तुम्हारे पास है,
दिव्य देव-सरि पात्र एक जलपान का।
अर्धमास तक अन्धेरे में वास है,
इन्दु-करों से दीपक पाते दान का।
एकमात्र आहार तुम्हारा वायु है,
अम्बर है प्राचीन एक आकाश ही!
सुनता हूँ मैं अन्त-हीन तव आयु है,
मृत्यु प्रिया विख्यात पुत्र है नाश ही!

ऐसे निर्धन तुम्हीं एक संसार में—
धन-कुबेर भी जाते जिसके द्वार पर!
तुम हो सबसे बड़े विश्व के प्यार में,
जग-विश्राम-स्थान तुम्हारा गेह वर!
मित्र तुम्हारे कुक्कुट गृद्ध शृगाल हैं,
परम शांत वीभत्स तुम्हारा रूप है।
आभूषणवत् अस्ति और नृकपाल है,
भूतल पर तव वेष श्मशान अनूप है।
शत्रु तुम्हारे जीवित प्राणी हैं सभी,
मृतक-मित्र तुमसा न और है दूसरा।
तुम तब तक सहयोग न करते हो कभी,
मानव को जब तक न जान लेते मरा।
पथ का भिक्षुक रहे या कि सम्राट हो,
शक्ति-हीन या भीमसेन सा हो बली।
चाहे कोई अपने घर का लाट हो,
अङ्क तुम्हारा सब की विश्राम-स्थली।
तन से लेकर पंचतत्व तुम बाँटते,
क्षिति, पावक, जल, भूमि और आकाश को।
मन से सबके मोह-रज्जु हो काटते,
दिखलाकर स्वर्गीय पवित्र प्रकाश को।
पर, श्मशान हो क्रूर बड़े हम जानते,
कर्म तुम्हारे दुःखद होते हैं महा।
जिसको हम जीवन-धन अपना मानते,
नाश देखकर उसका कहते हो 'अहा!'

पुष्पों की, कोमल वस्त्रों को, हृदय की,
सेज साजते थे हम जिस प्रिय के लिए।
इति करदी तुमने भी निश्चय अनय की—
काष्ठ-चिता-शैया देकर उसके लिये।
रो-रोकर हम वह्नि बुझाना चाहते—
'हो' 'हो' कर तुम उत्साहित करते उसे।
ऐसे कोमल तन को कैसे दाहते?
लज्जित होते वनज देख करके जिसे।
ले कितनों के लाल मिलाते धूल में,
कितनों का सर्वस्व अग्नि में डालते।
शूल हूल देते हो प्रायः फूल में,
तव करनी पर कितने आँसू डालते॥
जो हो, है गुण एक तुम्हारा श्रेष्ठतर,
साम्यवाद के तुम सच्चे आचार्य हो,
एक दृष्टि रखते संसारी जीव पर,
भिक्षुक हो, नृप हो, अनार्य हो, आर्य हो।

—बेचन शर्म्मा 'उग्र'

खँडहर से—

अरे, कौन तुम शान्त पथिक से यहाँ पड़े हो मूर्च्छित-से;
किस प्राचीन विगत वैभवके विस्मृत चिन्ह अपरिचित-से?
कहो अपना इतिहास,
किया किसने यह नाश?

हुआ तुम्हारा किन हाथों से था अनुपम शृंगार ;
कभी जगमगाते थे धारण कर तुम विद्युत-हार ।
तुम्हें थी क्या तब शांति ?
आज निकली जो भ्रांति ।

कभी गगन-चुम्बन करने के थे प्रयत्न में चूर ;
रत्नों से थे जटित, रम्य रुचि आभा थी भरपूर ।
तुम्हारा वह उत्थान ।
पतन का ही था गान ॥

कभी महाराजाओं के थे तुम सुख-शयनागार ;
कभी निराश्रित पथिकों के थे बने तुम्हीं आधार ।
वही तुम यों असहाय ,
पड़े हो अब निरुपाय !

अरे कौन तुम, ज़रा बता दो, किस समाधि में लीन ,
हुए भूपतित, नग्न-भग्न यों मौन, शून्य, हत दीन ।
तुम्हारा स्वर्णोद्यान ,
हुआ कैसे पाषाण ?

जगत तिरस्कृत करता है तुमको अब भूल अतीत ;
तुम्हें देख प्रति व्यक्ति आज हो जाता है भयभीत ।
तुम्हारी दशा विलोक ,
शोक को होता शोक ।

ठोकर खा, अपमानित हो सदियों से हो तुम सोते ;
अपनी दीनावस्था पर क्या नहीं कभी हो रोते !
लखो तो मेरी ओर
मौन की तोड़ो डोर !

अरे कहो वह कसक-कहानी जो बरसाती पीड़ा,
किस कठोरता ने उर-अन्तर पर की हँस-हँस क्रीड़ा।

कौन फल सहते आज,
तुम्हारे भग्न समाज ?

एक बार इस निर्जनता में प्रलय-गान दो छेड़ !
किये गये अत्याचारों की तह दो आज उधेड़ !

जला दो वह्नि सक्रोध,
उसी से लो प्रतिशोध !

अपने जीवन के रहस्य का प्रथम पृष्ठ दो खोल ;
अरे, देख लूँ पतित ! आज तुम कितने हो अनमोल !

अभी है क्या कुछ सार,
हो चुका या निस्सार !

—"चकोरी"

उद्गार

रत्नावली

नव स्वागत—

तुम बढ़ते ही चले मृदुलतर जीवन की घड़ियाँ भूले,
काठ छेदने लगे सहसदल की नव-पंखड़ियाँ भूले।
मन्द पवन संदेश दे रहा, हृदय-कली पथ हेर रही,
उड़ा, मधुप ! नंदन की दिशि में ज्वालाएँ घर घेर रहीं।
तरुण तपस्वी आ तेरा कुटिया में नव-स्वागत होगा।
दोषी ! तेरे चरणों पर फिर मेरा मस्तक नत होता॥

पुष्प की अभिलाषा—

चाह नहीं, मैं सुर-बाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध, प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि ! डाला जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के शिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ !
मुझे तोड़ लेना वनमाली ! उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक॥

सौदा—

चाँदी-सोने की आशा पर अन्तस्तल का सौदा,
हाथ-पाँव जकड़े जाने को, आमिषपूर्ण मसौदा।
टुकड़ों पर जीवन की श्वासें, कितनी सुन्दर दर है।
हूँ उन्मत्त तलाश रहा हूँ,—"कहाँ बधिक का घर है ?"
दमयंती के एक चीर की माँग हुई बाजी पर।
देश-निकाला स्वर्ग बनेगा, तेरी नाराजी पर !

खीझमयी मनुहार—

किन घड़ियों में तुझको झाँका तुझे झाँकना पाप हुआ !
आग लगे बरदान निगोड़ा मुझ पर आकर शाप हुआ !
जाँच हुई, नभ से भूमण्डल तक का व्यापक नाप हुआ !
अगणित बार समाकर भी छोटा हूँ—यह सन्ताप हुआ !
अरे अशेष ! 'शेष' की गोदी तेरा बने बिछौना-सा।
आ, मेरे आराध्य ! खिला लूँ मैं भी तुझे खिलौना सा।

—"एक भारतीय आत्मा"

उद्गार

मेरे जीवन की लघु तरणी ! आँखों के पानी में तर जा।
मेरे उर का छिपा खज़ाना, अहङ्कार का भाव पुराना,
बना आज तू मुझे दिवाना, तप्त स्वेद-बूँदों में ढर जा ॥१॥
मेरे नयनों की चिर आशा, प्रेम-पूर्ण सौंदर्य-पिपासा,
मत कर नाहक़ और तमाशा, आ, मेरी आहों में भर जा ॥२॥
मृदुल मनोरथ-तरु में फूला, फूल रंग में अपने भूला,
भूल चुका बस, जो कुछ भूला, अब अपनी डाली से झर जा ॥३॥
चढ़ी हृदय में चिता कराला, ऊपर नभ तक उठती ज्वाला,
मरण दुःख ! ले मुक्तामाला, गिरकर अब उसमें तू मर जा ॥४॥
ऐ मेरे प्राणों के प्यारे ! इन अधीर आँखों के तारे !
बहुत हुआ मत अधिक सतारे ! बातें कुछ भी तो अब कर जा ॥५॥
मानस-भवन पड़ा है सूना, तमोधाम का बना नमूना,
कर उसमें प्रकाश अब दूना, मेरी उग्र वेदना हर जा ॥६॥

मोहित तुझको करनेवाली, नहीं आज मुख की वह लाली,
हृदय-यन्त्र यह रक्खा खाली,अब नूतन सुर उसमें भर जा॥७॥

—मुकुटधर पाण्डेय

घट

कुटिल कंकड़ों की कर्कश रज मलमलकर सारे तन में,
किस निर्मम निर्दय ने मुझको बाँधा है इस बन्धन में ?
फाँसी-सी है पड़ी गले में नीचे गिरता जाता हूँ ;
बार-बार इस अन्ध-कूप में इधर उधर टकराता हूँ।
ऊपर-नीचे तम ही तम है; बन्धन है अवलम्ब यहाँ !
यह भी नहीं समझ में आता गिरकर मैं जा रहा कहाँ !
काँप रहा हूँ; भय के मारे हुआ जा रहा हूँ म्रियमाण,
ऐसे दुखमय जीवन से हा ! किस प्रकार पाऊँ मैं त्राण ?
सभी तरह हूँ विवश, करूँ क्या, नहीं दीखता एक उपाय;
यह क्या ? यह तो अगम नीर है,डूबा, अब मैं डूबा हाय!
भगवन् ! हाय ! बचा लो अब तो,तुम्हें पुकारूँ मैं जबतक,
हुआ तुरन्त निमग्न नीर में आर्तनाद करके तब तक ।
अरे, कहाँ वह गई रिक्तता ! भय का भी अब पता नहीं :
गौरववान हुआ हूँ सहसा, बना रहूँ तो क्यों न यहीं ?
पर मैं ऊपर चढ़ा जा रहा उज्ज्वलतर जीवन लेकर,
तुमसे उऋण नहीं हो सकता यह नवजीवन भी देकर ।

—सियारामशरण गुप्त

विप्लव-गायन

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ—जिससे उथल-पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये - एक हिलोर उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि-त्राहि रव नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का धुँआधार जग में छा जाये,
बरसे आग, जलद जल जायें, भस्मसात् भूधर हो जायें,
पाप-पुण्य सदसद्भावों की, धूल उड़ उठे दायें-बायें,
नभ का वक्षस्थल फट जाये तारे टूक-टूक हो जायें,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ; जिससे उथल-पुथल मच जाये।



माता की छाती का अमृतमय पय कालकूट हो जाये,
आँखों का पानी सूखे, वे शोणित की घूँटें हो जायें
एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति बिगलित हो जाये,
अन्धे मूढ़ विचारों की वह, अचल शिला विचलित हो जाये,
और दूसरी ओर कँपा देनेवाला गर्जन उठ धाये,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराये,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये।



नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जायें,
विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जायें,
शांति-दण्ड टूटे,—उस महारुद्र का सिंहासन थर्राये,
उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास, विश्व के प्राङ्गण में घहराये,
नाश! नाश!! हा महानाश!!!—की प्रलयङ्करी आँख खुलजाये,

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाये !!



"सावधान ! मेरी वीणा में चिनगारियाँ आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजराबें युगलांगुलियाँ ये मेरी ऐंठी हैं :
कण्ठ रुका जाता है, महानाश का गीत रुद्ध होता है,
आग लगेगी क्षण में, हृत्तल में अब क्षुब्ध युद्ध होता है,
झाड़ और झंखाड़ व्याप्त हैं—इस ज्वलन्त गायन के स्वर से,
रुद्ध-गीत की क्षुब्ध तान निकली है मेरे अन्तर-तर से !



"कण-कण में है व्याप्त वही स्वर रोम-रोम गाता है वह ध्वनि,
वही तान गाती रहती है, कालकूट फणि की चिन्तामणि,
जीवन-ज्योति लुप्त है—अहा ! सुप्त हैं संरक्षण की घड़ियाँ,
लटक रही हैं प्रतिपल में—इस नाशक संभक्षण की लड़ियाँ।
चकनाचूर करो जग को—गूँजे ब्रह्मांड नाश के स्वर से,
रुद्ध-गीत की क्रुद्ध तान, निकली है मेरे अन्तर-तर से !!



"दिल को मसल-मसल मेंहदी, रचता आया हूँ मैं यह देखो—
एक-एक अंगुलि परिचालन में नाशक ताण्डव को पेखो !
विश्व-मूर्ति ! हट जाओ—यह बीभत्स प्रहार सहे न सहेगा,
टुकड़े-टुकड़े हो जाओगी, नाश-मात्र अवशेष रहेगा।
आज देख आया हूँ, जीवन के सब राज़ समझ आया हूँ।
भ्रू-विलास में महानाश के पोषक-सूत्र परख आया हूँ।
जीवन-गीत भुला दो—कण्ठ मिला दो—मृत्यु-गीत के स्वर से,
रुद्ध-गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अन्तर-तर से !!!"

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

गीत

[१]

कैसे सँदेश प्रिय पहुँचाती।
दृगजल की सित मसि है अक्षय,
मसिप्याली, झरते तारक-द्वय ;
पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर,
सुधि से लिख साँसों के अक्षर ;
मैं अपने ही बेसुधपन में—
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती !

[२]

छायापथ में छाया से चल,
कितने आते-जाते प्रतिपल ;
लगते उनके विभ्रम इंगित,
क्षण में रहस्य क्षण में परिचित ;
मिलता दूत न वह चिरपरिचित
जिसको उर का धन दे आती !

[३]

अज्ञात पुलिन से, उज्ज्वलतर,
किरणें, प्रबाल-तरिणी में भर ;
तम के नीलम-कूलों पर नित,
ले आती जो ऊषा सस्मित ;
वह मेरी करुण कहानी में
मुस्कानें अङ्कित कर जाती।

[४]

सज केशर-पट तारक-बेंदी
दृग-अंजन मृदु पद में मेंहदी :
आती भर मदिरा से गगरी ,
संध्या अनुराग सुहाग भरी :
मेरे विषाद में वह अपनी
मधुरस की बूँदें छलकाती :

[५]

डाले नव घन का अवगुण्ठन ,
दृग तारक में सकरुण चितवन ,
पदध्वनि से सपने जाग्रत कर ,
श्वासों से फैला मूक तिमिर ,
निशि अभिसारों में आँसू से
मेरी मनुहारें धो जाती !

—महादेवी वर्मा

स्मृति या विस्मृति

सदियाँ बीतीं किन्तु न बतियाँ—वे दिन-रतियाँ—ही भूलीं,
जिनमें प्रकृतिपिया रसिया की रँगरलियों पर थी फूलीं ;
कली-कली विकसित हो जिस पर करती थी यौवन का दान,
उस नटखटी माधुरी मुरली पर मोहित हैं अब भी कान

सखी-सखाओं की वह क्रीड़ा, गैया-मैया का आह्वान;
करते हैं हिय-पट पर मेरे आँख-मिचौनी का अनुमान।
व्रज-वनिता की विरह-व्यथा से गूँज रहा अब भी आकाश,
किस छलिया की मधुर मूर्ति का आता है अभिनव आभास
जड़-चेतन, वृक्षों-पत्तों में रजकण में इक गुप्त प्रकाश,
प्रकटित करता है यह किसका छिपा हुआ उज्ज्वल इतिहास?
री वृन्दा, तू सत्य बता दे, क्या है यह सब, माया है?
या स्मृति है, अथवा कवि की कल्पित विस्मृति छाया है?

—'नटवर'

तुम और मैं

[१]

तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग, और मैं चंचलगति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छवास, और मैं कान्त-कामिनी कविता॥
तुम प्रेम—और मैं शांति।
तुम सुरापान-घन-अन्धकार, मैं हूँ मतवाली भ्रांति॥

[२]

तुम दिनकर के खर-किरण-जाल, मैं सरसिज की मुसकान।
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान।
तुम योग—और मैं सिद्धि।
तुम हो रागानुग निश्छल तप, मैं शुचिता सरल समृद्धि॥

[३]

तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरंजिनी भाषा।
तुम नन्दन-वन-घट-विटप, और मैं सुख-शीतल-तल शाखा॥
तुम प्राण--और मैं काया।
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म, मैं मनोमोहिनी माया॥

[४]

तुम प्रेममयी के कण्ठहार, मैं वेणी काल-नागिनी।
तुम कर-पल्लव झंकृत सितार, मैं व्याकुल विरह रागिनी॥
तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु।
तुम हो राधा के मनमोहन: मैं उन अधरों की वेणु।

[५]

तुम पथिक दूर के श्रान्त, और मैं वाट जोहती आशा।
तुम भवसागर दुस्तार, पार जाने की मैं अभिलाषा॥
तुम नभ हो, मैं नीलिमा।
तुम शरद सुधाकर कला हास मैं हूँ निशीथ मधुरिमा॥

[६]

तुम गंध कुसुम कोमल पराग, मैं मृदुगति मलय समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति-प्रेम-जंजीर।
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति।
तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र, मैं सीता अचला भक्ति॥

[७]

तुम हो प्रियतम मधुमास, और मैं पिक, कल कूजन तान।
तुम मदन पंचशर हस्त और मैं हूँ मुग्धा अनजान॥

तुम अम्बर, मैं दिग्वसना।
तुम चित्रकार घन पटल श्याम मैं तड़ित्तूलिका रचना॥

[८]

तुम रण ताण्डव उन्माद नृत्य मैं युवति मधुर नूपुर ध्वनि।
तुम नाद वेद ओंकार सार, मैं कबि शृङ्गार शिरोमणि॥
तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति।
तुम कुन्द इन्दु अरविंद शुभ्र, तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति॥

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

आँसू

करि मन मंदिर मैं भावना की भाटी धर्यो,
वास वासना कौ बर बासन विधान सौं।
गेरि सुखमूरि अनुराग के अँगूर तामैं,
रुचि-रस-सीझै मोह मधुक प्रमान सौं॥
लंव सुलगाइ त्यों जगाइ प्रेम पावक औ,
गोइ कै पचायौ उठ्यो उफनि उफानि सौं।
नेम नलिका ह्वै प्रेम-आसव उसाँस पाय,
आँसु ह्वै ह्वै रसत रसीली अँखियान सौं॥

उद्गार

जैहै नाहिं द्रुपद दुलारी की उतारी सारी,
जौ हम पितम्बर के धारी कहवैहैं तौ।

अन्त लखि सारी कौ अनन्त आनि अम्बर हूँ,
सुकवि 'रसाल' बेग ताही मैं जुटैहैं तौ।
करिहैं प्रयत्न नहिं अंत होन दैहैं केहूँ,
माँगि कै निलम्बर रमा हूँ कौ मिलैहैं तौ।
चाहू को जुह्वै है अन्त वा दुरन्त हाथनि सौं,
जोरिहैं पितम्बर दिगम्बर ह्वै रैहैं तौ॥



उद्धव के उद्गार

जोग बिधि भानुजा सरस्वति ह्वै ज्ञान गिरा,
हिय हिम सैल तै हमारैं उमगानी हैं।
तेई याग पुन्यकौ प्रयाग पाइ गोपिनकी,
भक्तिकी भगीरथि मैं उमँगि विलानी हैं।
एकै रूपरंग ह्वै त्रिबेनी लौं तहाँ तें चलि,
नन्द जसुधा कै नेहनीर उफनानी हैं।
राधा की रसीली प्रीति रीति राह सौं अथाह,
रावरे सनेह सुधा-सिन्धु मैं समानी हैं।



नैन-मीन

ह्वै कै दीन औंर मलीन जीवैं वै न पानी गये,
पानी के गये हूँ इन्हैं तैसेई पै हेरे हैं।
वे तौ नेह चाहती न नैसुक 'रसाल' कहैं,
चाहि औ सराहि डार नेहही मैं डेरे हैं।

मनुज अहेरी आय बंसी लाय बेधैं उन्हैं,
वंसीधर हू कौ बेधि कीन्हीं इन चेरे हैं।
वेंचत उन्हें है नर, इन पै बिकाइ जात,
नैन तौ न काहे ये अनोखे मीन तेरे हैं।



प्रेम-द्वीप

दीपक दिपै है ज्यों सनेह ह्वै सुगेह माँहिं,
देहि माहिं प्रेमदीप नेहलै दिपैहै त्यों।
आमै हैं पतङ्ग दौरि वापै प्रेमनेम लाइ,
याहूँ पै 'रसाल' चित्त दौरि दौरि ऐहै त्यों।
वामें ज्यों कलङ्क त्यों कलङ्क कहूँ याहूँ माँहि,
दोऊ सम दीखैं भेद एतो मिलि पैहै त्यों।
वाकी लौ बढ़ै है ज्यों ज्यों त्यों हीं त्यों घटहै नेह,
याकी लौ बढ़ै ज्यों अधिकाई नेह पैहै त्यों।

—रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल'

उपदेशामृत

प्रभात

बदरि बिरछ के पात पै, ओस-बुन्द छवि छाय।
कैसी लगत सुहावनी, अरुनोदय दुति पाय॥

सोइ निसापति जो गिरि मेरु पै,
पाँव धरे बिचरै निस माँहीं।
त्यों तम तो महि नासत जासुः
मरीचिका श्रीहरि-धाम लौं जाहीं॥
तेज गँवाइ गिरै नभ तै सोउ,
भोर समै दबि कै रवि पाहीं।
या जग माहिं बड़े हू बड़ेन की,
दीसत है थिर सम्पति नाहीं॥



प्रभाती

जागो भाई जागो रात रही थोरी।

काल चोर नहिं करन चहत है जीवन-धन की चोरी।
औसर चूके पुनि पछितैहौ हाथ मींजि सिर फोरी॥
काम करो नहिं काम न ऐहैं बातैं कोरी कोरी।
जो कुछ बीती बीत चुकी यों चिन्ता ते मुख मोरी।
आगे जामे बनै सो कीजै करि तन-मन एकठोरी॥
कोऊ काहूको नहिं साथी मात, पिता, सुत, गोरी।
अपने करम आपने संगी और भावना भोरी॥

सत्य सहायक स्वामि सुखदसे लेहु प्रीति जिय जोरी।
नाहिं तु फिर 'परताप हरी' कोऊ बात न पूछहि तोरी ॥

—प्रतापनारायण मिश्र

प्रशस्त-पाठ

कब कौन अगाध-पयोनिधि के उस पार गया जल-यान बिना।
मिल प्राण, अपान, उदान रहे, तन में न समान सव्यान बिना।
कहिये ध्रुव ध्येय मिला किसको, अविकल्प अचञ्चल ध्यान विना।
कवि 'शङ्कर' मुक्ति न हाथ लगी, भ्रमनाशक निर्मल ज्ञान विना ॥



पढ़ पाठ प्रचण्ड प्रमाद-भरे कपटी जन जन्म गमाय गये।
रण रोप भयानक आपस में भट केवल पाप कमाय गये ॥
धन-धाम बिसार धरातल में धनवान असंख्य समाय गये।
कवि 'शङ्कर' सिद्धि मनोरथ की, जड़ शुद्ध सुबोध जमाय गये ॥



उपदेश अनेक सुने मन को, रुचि के अनुसार सुधार चुके।
धर ध्यान यथाविधि मन्त्र जपे, पढ़ वेद पुराण विचार चुके ॥
गुरु गौरव-धार महन्त बने धनधाम कुटुम्ब विसार चुके।
कवि 'शङ्कर' ज्ञान विना न तरे सव ओर फिरे झख मार चुके ॥



निगमागम तंत्र पुराण पढ़े, प्रतिवाद प्रगल्भ कहाय खरे।
रच दम्भ प्रपञ्च पसार बने, वन वञ्चक वेष अनेक धरे ॥

विचरे कर पान प्रमाद-सुरा अभिमान हलाहल खाय मरे।
कवि 'शङ्कर' मोह-महोदधि से वकराज विवेक विना न तरे॥



गुरु गौरव-हीन कुचाल चलें मतभेद-पसार प्रपञ्च रचें।
दिन-रात मनोमुख मूढ़ लड़ें चहुँ ओर घने घमसान मचें॥
व्रत बन्धन के मिस पाप करें हठ छोड़ न हाय लबार लचें।
कवि 'शङ्कर' मोह-महासुर से बिरले जन पाय विवेक बचें॥



घरबार-बिसार विरक्त बने मुनि वेष बनाय प्रमत्त रहैं।
बकवाद अबोध गृहस्थ बने शठ शिष्य अनन्य सुजान कहैं॥
घुस घोर घमण्ड महावन में बिचरें कुलबोर कुपन्थ गहैं।
कवि 'शङ्कर' एक विवेक बिना कपटी उतपात अनेक सहैं॥



तन सुन्दर रोग-बिहीन रहै मन त्याग उमंग उदास न हो।
मुख धर्म-प्रसङ्ग प्रकाश करे नर-मण्डल में उपहास न हो॥
धन की महिमा भरपूर मिले, प्रतिकूल मनोज-विलास न हो।
कवि 'शङ्कर' ये उपभोग वृथा पटुता प्रतिभा यदि पास न हो॥



दिनरात समोद विलास करें, रस-रङ्ग-भरे सुख-साज बने।
शिरधार किरीट कृपाण गहें, अवनीभर के अधिराज बने।
अनुकूल अखण्ड प्रताप रहै, अविरुद्ध अनेक समाज बने।
कवि 'शङ्कर' वैभव-ज्ञान बिना भवसागर के न जहाज बने॥

—नाथूराम शर्म्मा "शङ्कर"

नया फूल

[जोगिया आसावरी]

खिला है नया फूल उपवन में।
सुखी हो रहे हैं सब तरुवर बेलें हँसती मन में॥
प्रात समीर लगी सुख पाया पहली दशा भुलाई।
जिधर निहारा उधर प्रेम की थाली परसी पाई॥
रूप अनूठा लेकर आया, मृदु सुगंधि फैलाई।
सब के हृदय-देश में अपनी प्रभुता-ध्वजा उड़ाई॥
जीत लिया है तूने सब को ऐसी लहर चलाई।
रोकर हँसकर सभी तरह से अपनी बात बनाई॥



फूल की कहानी

दो दिन खेल गया उपवन में।
रूप अनोखा लेकर आया, खेला-कूदा हँसा-हँसाया।
दिव्य-सुरभि से बन महँकाया॥
इससे बढ़कर भला और क्या रक्खा है जीवन में॥१॥
गुण-सौन्दर्य देखकर प्यारा, रीझ गया माली हत्यारा।
और किया डाली से न्यारा॥
तोड़ ले चला दुष्ट बेचने दया न आई मन में!॥२॥
जीवित सब ने सीस चढ़ाया, मृत हो जाने पर ठुकराया।
घर से बहुत दूर फिकवाया॥
लगी रही दुनिया सदैव-सी अपने मन के धन में।
दो दिन खेल गया उपवन में॥३॥

—बदरीनाथ भट्ट

सज्जनों का स्वभाव

दिनकर कमलों को स्वच्छ देता सुहास।
शशि कुमुद गणों को रम्य देता विकास॥
जलद बरसते हैं भूमि में अम्बु-धारा।
सुजन बिन कहे ही साधते कार्य सारा॥

विकल अति क्षुधा से देख के पुत्र प्यारा।
जननि-हृदय से है छूटती दुग्ध-धारा॥
लखकर कुदशा ज्यों दीन दुःखी जनों की।
सहज प्रकट होती है दया सज्जनों की॥

लहर-रहित होता है पयोधि-प्रशांत।
सहृदय रहते त्यों धीर गम्भीर शान्त॥
सुख, दुख, भय, चिन्ता आदि से हो अलिप्त!
स्थिर मति रहते हैं साधु ही आत्म-तृप्त॥

सब नद-नदियों का नीर धाराप्रवाही।
बहकर मिलता है सिन्धु में सर्वदा ही॥
तदपि न तजता है आत्म-मर्याद सिन्धु!
सविपुल सुख में भी गर्व लाते न साधु॥

यदि सब सरिताएँ ग्रीष्म में शुष्क हों भी।
वह उदधि रहेगा पूर्ण ही मित्र तो भी॥
धन सुख प्रभुता का सर्वथा हो अभाव।
पर सम रहता है सज्जनों का स्वभाव॥

—लक्ष्मीधर वाजपेयी

वन-विहंगम

(१)

बनबीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत-कपोती कहीं।
दिन-रात न एक को दूसरा छोड़ता, ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं।
बढ़ने लगा नित्य नया-नया नेह, नयी-नयी कामना होती रहीं।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं॥

(२)

रहता था कबूतर मुग्ध सदा, अनुराग के राग में मस्त हुआ।
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ।
जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ।
इस भाँति परस्पर पक्षियों में भी, प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ॥

(३)

सुविशाल वनों में उड़े फिरते, अवलोकते प्राकृत चित्र-छटा।
कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटा का भी मान घटा।
कहीं कोसों उजाड़ में झाड़ पड़े, कहीं आड़ में कोई पहाड़ सटा।
कहीं कुञ्जलता के बितान तने, सब फूलों का सौरभ था सिमटा॥

(४)

झरने झरने की कहीं झनकार, फुहार का हार विचित्र ही था।
हरियाली निराली न माली लगा, फिर भी सब ढङ्ग पवित्र ही था।
ऋषियों का तपोवन था सुरभी का जहाँ पर सिंह भी मित्र ही था।
बस जान लो सात्विक सुन्दरता सुख संपति शांति का चित्र ही था॥

(५)

कहीं झील-किनारे बड़े-बड़े ग्राम, गृहस्थ-निवास बने हुए थे।
खपरैलों में कद्दू करैलों की बेल के; खूब तनाव तने हुए थे।
जल शीतल अन्न जहाँ पर पाकर, पक्षी घरों में घने हुए थे।
सब ओर स्वदेश-स्वजाति, समाज-भलाई के ठान ठने हुए थे॥

(६)

इस भाँति निहारते लोककी लीला, प्रसन्न वे पक्षी फिरैं घर को।
उन्हें देखते दूर ही से मुख खोल के, बच्चे चलैं चट बाहर को।
दुलराने, खिलाने, पिलाने से था, अवकाश उन्हें न घड़ी भर को।
कुछ ध्यान ही था न कबूतर को, कहीं काल चढ़ा रहा है शर को॥

(७)

दिन एक बड़ा ही मनोहर था, छबि छाई वसन्त की कानन में।
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी, जड़-चेतन के तन में, मन में।
निकले थे कपोत-कपोती कहीं, पड़े झुण्ड में घूम रहे वन में।
पहुँचा यहाँ घोंसले पास शिकारी, शिकार की ताक में निर्जन में॥

(८)

उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास, बिछा दिया जालको कौशल से।
वहाँ देख के अन्न के दाने पड़े, चले बच्चे अभिज्ञ जो थे छल से।
नहीं जानते थे कि यहीं पर है, कहीं दुष्ट भिड़ा पड़ा भूतल से।
बस, फाँस के बाँस के बन्धन में, कर देगा हलाल हमें बल से॥

(९)

जब बच्चे फँसे उस जाल में जा, तब वे घबरा उठे बन्धन में।
इतने में कबूतरी आई वहाँ दशा देख के व्याकुल हो मन में।

कहने लगी—हाय ! हुआ यह क्या ! सुत मेरे हलाल हुए वन में।
अब जाल में जाके मिलूँ इनसे सुख ही क्या रहा इस जीवन में ॥

(१०)

उस जाल में जाके बहेलिये के, ममता से कबूतरी आप गिरी।
इतने में कपोत भी आया वहाँ, उस घोसले में थी विपत्ति निरी।
लखते ही अन्धेरा-सा आगे हुआ, घटना की घटा वह घोर घिरी।
नयनों से अचानक बूँद गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी ॥

(११)

तब दीन कपोत बड़े दुख से, कहने लगा—हा ! अति कष्ट हुआ।
निबलों ही को दैव भी मारता है, ये प्रवाद यहाँ पर स्पष्ट हुआ।
सब सूना किया चली छोड़ पिया, सबही बिधि जीवन नष्ट हुआ।
इस भाँति अभागा अतृप्त ही मैं, सुख-भोग के स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ ॥

(१२)

कल-कूजन-केलि-कलोल में लिप्त हो, बच्चे मुझे जो सुखी करते।
जब देखते दूर से आता मुझे किलकारियाँ मोद से जो भरते।
समुहाय के, धाय के, आय के पास, उठाय के पङ्ख नहीं टरते।
वही हाय ! हुए असहाय, अहो ! इस नीच के हाथ से हैं मरते ॥

(१३)

गृहलक्ष्मी नहीं, जो जगाये रहा करती थी सदा सुख-कल्पना को।
शिशु भी तो नहीं जो उन्हीं के लिए सहता इस दारुण वेदना को।
वह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा भोग रहा यम-यातना को।
अब मैं ही वृथा इस जीवन को रख कैसे सहूँगा विडम्बना को ॥

(१४)

यहाँ सोचता था यों कपोत, वहाँ चिड़ीमार ने मार निशाना लिया।
गिर लोट पड़ा धरती पर पत्ती, बहेलिए ने मनमाना किया।
पल में कुल का कुल काल कराल ने भूत भविष्य में भेज दिया।
क्षण-भङ्गुर जीवन की गति का यह एक निदर्शन है बढ़िया॥

(१५)

हर एक मनुष्य फँसा जो ममत्व में तत्व महत्व को भूलता है।
उसके सिर पै खुला खड्ग सदा, बँधा धागे में धार से भूलता है।
वह जाने बिना बिधि की गति को अपनी ही गढ़न्त में फूलता है॥
पर अन्त को ऐसे अचानक अन्तक अस्त्र अवश्य ही हूलता है॥

(१६)

पर जो मन भोग के साथ ही योग के काम पवित्र किया करता।
परिवार से प्यार भी पूर्ण रखे, पर-पीर परन्तु सदा हरता।
निज भाव न भूल के,भाषा न भूल के, विघ्न-व्यथा को नहीं डरता।
कृतकृत्य हुआ हँसते-हँसते, वह सोच-सँकोच बिना मरता॥

(१७)

प्रिय पाठक! आप तो विज्ञ ही हैं, फिर आपको क्या उपदेश करें।
शिर पै शर ताने बहेलिया-काल खड़ा हुआ है यह ध्यान धरें।
दशा अन्त को होनी कपोत की ऐसी, परन्तु न आप ज़रा भी डरें।
निज धर्म के कर्म सदैव करें, कुछ चिन्ह यहाँ पर छोड़ मरें॥

—रूपनारायण पाण्डेय

दीपक की आत्म-कथा

जिसने किया स्नेह से रक्षित था,
कुल गेह का दीप बना करके ।
प्रति बार हितैषी सजाता रहा,
नवयौवन-ज्योति जगा करके ।
जलता रहा देख उसे ही सदा,
निज प्रेमियों को भी जला करके ।
अब डाह की वृत्ति कहाँ गई वो,
मुझे मृत्तिका में यों मिला करके ॥
नवरूप की ज्योति में था मुझपै,
दल-प्रेमी पतङ्ग कभी मरा है ।
सुर-सुन्दरियों ने सँवारा कभी,
निज नेह के द्वारा मुझे भरा है ।
बन मिट्टी मिला जब मिट्टी में मैं,
नहीं पूछता बात कोई जरा है ।
अपना अब दूसरा कौन है ? हाँ,
नभ ऊपर नीचे बसुन्धरा है ॥



थदर्शक मैं उसका ही बना मुझको जो सँभालनेवाला हुआ ;
ासने भी हितैषी जलाया मुझे उसका उर-दाहक छाला हुआ ।
ारवापित जो करने को बढ़ा तो वही मुख धूम्र से काला हुआ ;
ासने भी सनेह से पाला मुझे उसके घर का मैं उजाला हुआ ।
ायमेव प्रकाशक होके न जाना कि आना हुआ किमि मेरा यहाँ ?
ब जाना पड़ेगा ? हितैषी कहाँ ? कितने क्षणों का है बसेरा यहाँ ।

किये ज्योति असीम को सीमित, बद्ध है मृत्तिका का यक घेरा यहाँ;
पथ तेरा दिखा सकूँ क्या भला मैं ? निज पाँव-तले है अँधेरा यहाँ ॥

—"हितैषी"

सौन्दर्य्य

(१)

बहती है सौन्दर्य्य-सुधा उस राजमार्ग के तट पर,
जहाँ खड़ी भिक्षा की दुखिया अञ्चल मलिन बढ़ाकर !

(२)

रूप कुरूप हुआ जाता है उस शोभा के आगे,
जहाँ निधन के धन दो बालक सोते-सोते जागे !

(३)

सुन्दरता की सीमा देखो, उल्लंघित उस थल है,
श्रमित कृषक के कृष शरीर से जहाँ बरसता जल है !

(४)

है अभिराम अमृत का झरना उस अछूत के घर में,
छूकर जिसे अपावन पावन होते हैं क्षण-भर में।

(५)

बरस रही अविराम मोहनी उस छाया के नीचे,
पतिता के अनुताप-कणों ने जहाँ कमल-दल सींचे।

(६)

हैं अनुपम वे विश्वविमोहन उन्मत्तों की टोली,
मातृभूमि को चूम रहीं जो, हँस-हँस खाकर गोली!

(७)

है शोभा का सार छलकता उस नीरव निर्जन में,
जहाँ धूलि में सुमन मिल गया रखकर मन की मन में।

—शम्भूदयाल सकसेना

प्रतिज्ञा

सत्य सन्ध सुर-साधु-त्राता व्रतधर राघव असुरारे।
अच्युत अपने अचल-व्रत से भर दो भक्त-हृदय सारे॥
भीष्म-भावना हरिश्चन्द्र की सत्य वीरता पाऊँ मैं।
पालन करके कृत-प्रतिज्ञा जन्म-भूमि यश गाऊँ मैं॥
विमल विचार विशद बचनों से भारत-गगन गुँजाऊँगा।
सत्कृत कर सर्वत्र देश की प्रतिमा पूज्य पुजाऊँगा॥
आत्मिक बल का वर्म पहिन कर यथा मनोरथ विचरूँगा।
सहृदयता का स्रोत बहाकर त्रस्ततृषा को हर दूँगा॥
बन्धुवर्ग मानव-समाज की सेवा सतत करूँगा मैं।
अनुपम आर्यादर्श देश के सम्मुख सदा धरूँगा मैं॥
जीवन सरल भद्र भावों से भूषित मुझको भावेगा।
परहित पर मरने में मेरा मन आनन्द मनावेगा॥

संयमशील बनूँगा, इन्द्रिय लोलुपता न सतायेगी।
मेरे पार्थ-हृदय की गुरुता रुचि-उर्वशी न पायेगी॥

आडम्बरमय रुचिर सृष्टि में वीर विदेह बनूँगा मैं।
धँसकर उसके अन्तरतल में रत्न-निगूढ़ खनूँगा मैं॥

अन्तःकरण अमल रक्खूँगा निश्छल नीति प्रचारूँगा।
करके नित निष्काम कर्म मैं स्वार्थ-सर्प को मारूँगा॥

होगा देह-प्रेम देश-हित मुनि दधीच के तुल्य सदा।
बन प्रह्लाद दृढ़व्रत हूँगा सहकर अत्याचार गदा॥

दुराचरण दुर्व्यूह भेदने बनकर मैं सौभद्र बली।
नियम-निषङ्ग तीव्र छोड़ूँगा, तोड़ूँगा दुष्कृत्य कली॥

महावीर मारुति के सम भय-भानु भयंकर निगलूँगा।
देख प्रहार पुरन्दर का भी पथ से कभी न विचलूँगा॥

पावस शीत निदाघ ताप की मुझको परवा ज़रा नहीं।
दूँगा त्वरित सहारा पाऊँ पतित पुरुष यदि पड़ा कहीं॥

भरकर अङ्क दीन-दुखियों को मैं सस्नेह उठाऊँगा।
पर-पाशों में पड़े हुओं के बन्धन विकट छुड़ाऊँगा॥

सोऊँगा न शांति-शय्या पर यदि स्वदेश हो सुखी नहीं।
कभी न देख सकूँगा अपने देशबन्धु को दुखी कहीं॥

शरणागत के अभयदान-हित कर्कश कष्ट उठाऊँगा।
अपने पूज्य पूर्वपुरुषों की शुभ सन्तान कहाऊँगा?

भारत, तुझे त्यागकर क्या मैं स्वर्गभूमि में जाऊँगा?
तेरी समता क्या त्रिलोक में तीन लोक में पाऊँगा!

अमरो तुम अपने घर बैठो, मैं अपने घर काम करूँ।
जन्म धरूँ फिर-फिर भारतमें, भारतके हित सदा मरूँ॥

बसुधे ! यदि प्रण-भङ्ग-भाव का ध्यानमात्र भी उठे कभी ।
मेरा मुँह न दिखाई दे फिर फट जाना कर दया तभी ॥
दिव्य दिशाओ ! साक्षी हो तुम, पुण्य प्रतिज्ञा करता हूँ ।
परमपिता ! बल देना, तेरी ज्योति हृदय में भरता हूँ ॥

—गोकुलचन्द्र शर्म्मा

पुस्तक-प्रेम

मैं जो नया ग्रन्थ विलोकता हूँ, भाता मुझे सो नव मित्र-सा है ।
देखूँ उसे मैं नित बार-बार, मानो मिला मित्र मुझे पुराना ॥
"ब्रह्मन, तजो पुस्तक-प्रेम आप देता अभी हूँ यह राज्य सारा ।"
कहे मुझे यों यदि चक्रवर्त्ती, "ऐसा न राजन् कहिये" कहूँ मैं ॥
अखण्ड भण्डार भरा हुआ है, सुवर्ण का जो मम गेह में हो ।
बताइए, हे मम मित्रवर्य्य ! क्यों लूँ किसी के फिर दान को मैं ॥
गिने हुए सज्जन-वृन्द का तो, कभी-कभी मैं करता सुसङ्ग ।
परन्तु है पुस्तक मित्र ऐसा, होता कभी जो मुझसे न न्यारा ॥
इच्छा न मेरी कुछ भी बनूँ मैं कुबेर का भी जग में कुबेर ।
इच्छा मुझे एक यही सदा है, नये-नये उत्तम ग्रन्थ देखूँ ॥

—गिरिधर शर्म्मा "नवरत्न"

क्या मोल ?

भिगोया जिन चरणों को नित्य, हृदय का सारा सार निचोड़ ।
चढ़ा दी जिन पर मधु की राशि, मृदुल नवजीवन-कलिका तोड़ ॥

उन्हीं से कुचली जातीं आज सजल वेही आँखें सुकुमार !
पड़ी पथ पर जो हैं बन दीन निरखने उनका ही शृंगार।
सद्‌यता का करके संहार बने वे कितने निर्दय आज—
तुझे क्या बतलाऊँ ऐ विश्व ! बताते भी आती है लाज॥
व्यथा का यह करुणामय दृश्य, वही आ देखेंगे उर-खोल !
उन्हीं से पूछूँगा—"प्राणेश ! दुखी के जीवन का क्या मोल ?"

—जनार्दनप्रसाद झा "द्विज"

पछतावा

मेरे उर का कल्मष होता उस सूने पथ का रज-कण,
सारा अहङ्कार जग का बह जाता जिसमें दृग-जल बनः
मेरे नयनों का प्रकाश उस कुटिया का दीपक होता,
जिसमें वैभव निर्धनता के चरण अश्रु बनकर धोता।

मेरे श्रवणों की उत्कण्ठा होती वह आशा-सन्देश,
जिससे बुझता हृदय किसी का फिर पाता नव-ज्योति विशेषः
मेरे उर का स्नेह सरसता होता उसके जीवन की,
जिस निर्धन का हृदय पार कर जाता 'हाट' प्रलोभन को।

मेरे कर की तत्परता उस नौका की होती पतवार,
जिसे नये नाविक का साहस भँवरों में खेता मँझधारः
मेरे निश्चय की सब दृढ़ता होती वह निबिड़ालिंगन,
जिसमें व्यथित, पतित, पीड़ित फिर पाते खोया—'अपनापन'।

मेरी कर्कशता होती उस रण में तरुणों की हुङ्कार,
जिसमें दलित मनुजता उठती पशुबल का करने प्रतिकारः

मेरा जीवन जग-जीवन के कण-कण में वितरित होता,
मेरा 'सब-कुछ' हाय ! न होता यदि मेरा, तो हित होता।
—जगन्नाथप्रसाद "मिलिन्द"

स्मृति

[शोक-काव्य का एक अंश]

है अनित्य संसार दो दिन के सब सुख हैं,
रोना है बस यहाँ अन्त में दुख ही दुख हैं।
सुख की करके चाह भटकते हम रहते हैं,
कल्पित सुखके लिए क्लेश अगणित सहते हैं।
अट्टालिका महान बनाते हैं श्रम करके,
लेते हैं साम्राज्य समर में हम मर-मरके!
किन्तु अन्त में वहीं, मही में मिल जाना है,
जिस मिट्टी से बने वही मिट्टी पाना है।
क्या है फिर उद्देश्य जन्म मानव पाने का।
आये क्यों हम यहाँ, अर्थ क्या मर जाने का ?
किसने भेजा हमें ?—और भेजा ही क्योंकर ?
मानी ही क्यों बात ठौर जब है यह दुस्तर ?
कहते हैं कुछ लोग ईश की लीला है यह।
अपने आनन्दार्थ भेजता है हमको वह।
कर्मों के अनुसार हमें वह दुख देता है,
उनके ही अनुकूल हमें वह सुख देता है।

किन्तु कर्म के जटिल बन्धनों-मध्य पड़े क्यों ?
हरि की इच्छा-पूर्ति-हेतु हम यहाँ सड़ें क्यों ?
नभ-स्पर्श के लिए उछल रवि शशि लों जाना,
खा पर्वत से चोट, जलधि-तल में गिर आना।
काम-क्रोध, मद, लोभ आदि से पीड़ित होना,
चिंताओं का भार व्यर्थ जीवन-भर ढोना।
अन्य व्यक्ति के लिए कभी कोई न करेगा।
जब लौं उससे स्वार्थ स्वयं उसका न करेगा।
और, हमें कर विवश पठाता है यदि हमको।
निज विनोद के लिए सताता है यदि हमको।
अत्याचार-निकेत ! उसे फिर राक्षस कहिये !
परमपिता कह उसे स्मरण क्यों करते रहिये ?
स्वेच्छा बिना कदापि यहाँ हम आ न सके हैं।
बिना किसी सौन्दर्य्य कदापि लुभा न सके हैं।
मुझको पड़ता जान सुखी के पीछे फिरना।
उनका पा आभास और दुःखों में गिरना।
विधवाओं का रुदन ! विकलकर आहें भरना।
माता का निज पुत्र के लिए क्रन्दन करना।
मित्र विरह से मित्र-मण्डली का दुख पाना।
देश-बन्धुओं का वियोग में अश्रु बहाना !
स्वेच्छा के अनुकूल क्रियाएँ हैं ये सारी।
इनसे बनती सरस विरस जीवन की क्यारी।
हाँ, देखे सुख-स्वप्न अधिकता दुख की होवे,
हृदय प्यार में पड़ा प्रेम के हित नित रोवे।

यही लालसा, यही कामना क्लेश स्वाद की;
लाती जग में यही हमें इच्छा विषाद की।
भूल गये हैं इसे भुलाया भी है हमने,
निज को अपने आप सुलाया भी है हमने।
दिव्य स्वप्न निर्माण के लिए हम आते हैं।
क्षण-क्षण में नव स्वप्न देखते ही जाते हैं।
जो अतीत के गर्भ-मध्य विगलित होता है,
होता है वह स्वप्न सदा को वह सोता है।
वर्तमान को सदा सत्य हम बतलाते हैं,
उसके पाले पड़े सतत रोते गाते हैं।
होगी वह भी घड़ी आँख जब खुल जावेगी,
लेंगे हम पहचान स्वयं को स्मृति आवेगी।
आत्म-ज्ञान प्रशान्त हमें सानन्द करेगा,
स्वप्न कालकृत क्लान्ति हमारी सभी हरेगा।
स्वेच्छा से फिर भुला स्वयं को हम आवेंगे,
और इसी विधि स्वप्न देखने लग जावेंगे।
दुःख क्लेश के सङ्ग जगत में हम आते हैं,
चिन्ताओं के लिए जन्म हम सब पाते हैं।
व्यथा-वेदना और विरह है भोग हमारा,
होता उससे सरस सौख्य संयोग हमारा।
परिवर्तनशीलता निरालापन दिखला के,
लेते हैं आनन्द स्वयं हम काव्य बना के।
दिनकर-अन्त रात का आना, यौवन का कुम्हलाना,
फूलों का झड़ना, कलियों का असमय ही गिर जाना।

सधवा का विधवा हो जाना, हास की जगह रोना ;
पुत्रवती का पुत्र-विहीना होकर सब सुख खोना।
स्वप्नों को सौंदर्य के लिए हमने स्वयं बनाया,
उनकी भिन्नावस्थाओं में सुख-दुख स्वीय बसाया।
फिर दुख का आधिक्य देख हम क्यों घबरावें ?
क्यों न क्लेश की प्राप्ति के समय मोद मनावें !
नहीं, दुःख जब मिले रुदन करना ही चहिए,
सहने में होकर अशक्त व्याकुल हो रहिए।
जब अधीरता-घटा घनी फिर घहरावेगी,
अन्धकार में मार्ग दामिनी दिखलावेगी।
तब होगा उल्लास, दुःखरस तभी मिलेगा,
तीखेपन-पश्चात माधुरी कुसुम खिलेगा।
तो विपत्तियो ! विकट करो आक्रमण, पधारो,
लेकर पैने खड्ग हृदय में मेरे मारो।
समय ! करो संहार हमारे मृदु शैशव का।
करो पूर्ण अपहार हमारे सब वैभव का।
वनदेवी की विरह-व्यथा में हमें जलाओ।
पूज्य पितामह के वियोग में हमें रुलाओ।

—"गिरीश"

मोक्षासन्न

(१)

इस घोर निराशा के तम में, यह आशा का प्रकाश कैसा ?
मुझ व्यामोहान्ध नराधम में, तृष्णा का कभी नाश कैसा ?
निश्चय मृग-जल है, छलना है, यह रंग, हवा में रँग कैसा ?
यह शिशु का बिकट मचलना है, पर शशि पाने का ढँग कैसा ?

(२)

रण की दुन्दुभी बजी कैसी, वह शङ्खों का स्वर था कैसा ?
उर में जयमाल सजी कैसी ? वह विजय-स्वयंवर था कैसा ?
यह शांति कहाँ से आयी है, सौ शशियों का संगम कैसा ?
कैसी अविफलता छायी है, जड़ का होना जंगम कैसा ?

(३)

वह निकट चला-सा आता है, सर्वव्यापी प्रकाश कैसा ?
तन कहाँ चला-सा जाता है, सब का सम्यक् विनाश कैसा ?
पर, युग अनित्यता के तन में, है आज नित्यता का कैसा ?
स्पंदन अनेकता के मन में, है आज एकता का कैसा ?

(४)

सब तत्व कहाँ ये जाते हैं, नभ का हो रहा लोप कैसा ?
जो अड़ते मुँह की खाते हैं, स्थूलों पर सूक्ष्म कोप कैसा ?
कर दुख-द्वन्दों का घोष वन्द, गम्भीरानन्द-नाद कैसा ?
करता सम्पूर्ण प्रगाढ़ मन्द, यह सुखमय गुरुप्रमाद कैसा ?

(५)

यह है आँखों का ही विनाश, अन्तर्दृग का खुलना कैसा ?
यह है स्वप्नों का बिकट पाश, जकड़े मृग का डुलना कैसा ?
यह है युग पक्षाघात भला, मन के अतीत होना कैसा ?
है सारा पूर्व प्रदेश जला, निशि का व्यतीत होना कैसा ?

(६)

इस अगम अनन्त उँचाई पर यह एकाएक वास कैसा ?
इस नित्य अचिन्त्य सचाई पर झूठे का सुख-विलास कैसा ?
उड़कर मण्डूक विश्व बनकर हो गया स्वयं स्वरूप कैसा ?
लघु बना एक ममता जनकर अद्वैत विराट रूप कैसा ?

(७)

यह कहाँ गयी गहरी छाया, तम हुआ स्वयं प्रकाश कैसा ?
पूर्ण स्वतंत्रता बन आया, माया का महापाश कैसा ?
चमका है चरम विकासानन, जिससे यह ह्रास-हास कैसा ?
कर सका एक रस-ब्रह्म-जनन, यह प्रलय-स्वरूप नाश कैसा ?

(८)

उस अनुपम सुख-दुखकी स्मृतिमय माया का था प्रभाव कैसा ?
अति विषय-विलास-स्वविस्मृतिमय, है मेरा यह स्वभाव कैसा ?
वह परवशता-वश परमितता का था विचित्रतम भ्रम कैसा ?
अब नित्य ज्योति निज आत्मिकता के पाने में सम्भ्रम कैसा ?

—आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

स्वदेश-प्रेम आदि

कुटीर का पुष्प

भाग्यवान हूँ, इस ही में यह विजन कुटीर करूँ सुरभित।
नहीं तनिक इच्छा मुझको मधुकर-मण्डित आरामों की।
दुर्बल अङ्ग, स्वल्प सौरभ, मम काम-स्थल यह कोना है।
इसे सजाऊँ, इसे रिझाऊँ, केवल यही कामना है।
यही लालसा हिय में, इसका इक दिन बिँध गलहार बनूँ;
अपना सब सौरभ समाप्त कर रज-कन में बस वास करूँ॥

—पुरुषोत्तमदास टण्डन

मातृभूमि

(१)

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे-मण्डल हैं;
वन्दी विविध विहंग, शेष-फन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं,
बलिहारी इस वेश की!
हे मातृभूमि तू सत्य ही,
सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

(२)

मृतक समान अशक्त विवश आँखों को मीचे ;
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे !
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था :
लेकर अपने अतुल अंग में त्राण किया था ।
जो जननी का भी सर्वदा,
थी पालन करती रही ।
तू क्यों न हमारी पूज्य हो,
मातृभूमि माता मही ॥

(३)

जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं;
घुटनों के बल सरक-सरककर खड़े हुए हैं।
परमहंस-सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूलभरे हीरे' कहलाये ।
हम खेले कूदे हर्ष-युत,
जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि ! तुझको निरख,
मग्न क्यों न हो मोद में ?

(४)

पालन, पोषण और जन्म का कारण तू ही;
वक्षःस्थल पर हमें कर रही धारण तू ही ।
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे;
बने हुए हैं अहो ! तुझी से तुझ पर सारे ।

हे मातृभूमि जब हम कभी,
शरण न तेरी पायँगे,
बस तभी प्रलय के पेट में,
सभी लीन हो जायँगे !

(५)

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है;
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा;
पोषण करती प्रेमभाव से सदा हमारा।

हे मातृभूमि ! उपजें न जो,
तुझसे कृषि अंकुर कभी।
तो तड़प-तड़पकर जल मरें,
जठरानल में हम सभी।

(६)

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा;
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा ?
तेरी ही यह देह तुझी से बनी हुई है;
बस तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है।

हा ! अन्त समय तू ही इसे,
अचल देख अपनायगी।
हे मातृभूमि ! यह अन्त में;
तुझमें ही मिल जायगी ॥

(७)

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता।
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता:
नहीं टूटता कभी जन्मभर जिनसे नाता।

उन सबमें तेरा सर्वदा:
व्याप्त हो रहा तत्व है।
हे मातृभूमि! तेरे सदृश,
किसका महा महत्व है?

(८)

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है:
शीतल मन्द सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है।
षट् ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है;
हरियाली का फ़र्श नहीं मख़मल से कम है।

शुचि सुधा सींचता रात में,
तुझ पर चन्द्र प्रकाश है।
हे मातृभूमि! दिन में तरणि,
करता तम का नाश है॥

(९)

सुरभित सुन्दर सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं;
भाँति-भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं।
औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली;
खानें शोभित कहीं धातु-वर-रत्नोंवाली।

आवश्यक जो होते हमें,
मिलते सभी पदार्थ हैं।
हे मातृभूमि! 'बसुधा' 'धरा'
तेरे नाम यथार्थ हैं॥

(१०)

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी।
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी;
फूलों से तरुराजि कर रही पूजा तेरी।

मृदुमलय-वायु मानों तुझे,
चन्दन चारु चढ़ा रही।
हे मातृभूमि! किसका न तू,
सात्विक भाव बढ़ा रही?

(११)

क्षमामयी तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है;
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुखहर्त्री है,
भय-निवारिणी शान्तिकारिणी सुखकर्त्री है;

हे शरणदायिनी देवि! तू,
करती सबका त्राण है।
हे मातृभूमि! सन्तान हम,
तू जननी, तू प्राण है॥

(१२)

आते ही उपकार याद हे माता ! तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेरा,
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें,
मन तो होता तुझे उठाकर शीश चढ़ावें;

वह शक्ति कहाँ, हा क्या करें,
क्यों हमको लज्जा न हो।
हम मातृभूमि ! केवल तुझे,
शीश झुका सकते अहो !

(१३)

कारण-वश जब शोकदाह से हम दहते हैं,
तब तुझ पर ही लोट-लोटकर दुख सहते हैं;
पाखंडी भी धूल चढ़ाकर तन में तेरी,
कहलाते हैं साधु, नहीं लगती है देरी।

इस तेरी ही शुचि धूलि में,
मातृभूमि ! वह शक्ति है।
जो क्रूरों के भी चित्त में,
उपजा सकती भक्ति है॥

(१४)

कोई व्यक्तिविशेष नहीं तेरा अपना है,
जो यह समझे हाय ! देखता वह सपना है;
तुझको सारे जीव एकसे ही प्यारे हैं,
कर्मों के फल मात्र यहाँ न्यारे-न्यारे हैं।

हे मातृभूमि ! तेरे निकट,
सब का सम सम्बन्ध है,
जो भेद मानता वह अहो !
लोचनयुत भी अन्ध है।

(१५)

जिस पृथिवी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान ! कभी हम रहें न न्यारे।
लोट-लोटकर वहीं हृदय को शान्त करेंगे,
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।

उस मातृभूमि की धूल में ;
जब पूरे सन जायँगे।
होकर भव-बन्धन-मुक्त हम,
आत्मरूप बन जायँगे।

—मैथिलीशरण गुप्त

प्यारा हिन्दुस्तान

मेरु, द्रोण, हिमगिरि विन्ध्याचल,
गंगा, यमुना, कच्छ, मरुस्थल,
सागर, सरिता, स्रोत, समंगल,
करते विरद बखान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान ॥

वन, उपवन, फल-फूल मनोहर,
ललित लता लिपटीं तरुवर पर,
सरसिज सहित समोद सरोवर,

करे सदा सुखदान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान॥

ऋषि, मुनि, वीर व्रती ब्रह्मचारी,
साधु, सती, सम्राट, सुखारी,
शिल्पी, सुकवि, गुणी, नर-नारी,

सब का जन्मस्थान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान॥

राम कृष्ण ने वीर बनाकर,
शेर शिवाजी ने अपनाकर,
प्रिय प्रताप ने प्राण गँवाकर,

जीवन किया प्रदान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान॥

बहे सदुन्नति की ध्रुवधारा,
चमके फिर सौभाग्य-सितारा,
धर्म-कर्म दोनों के द्वारा,

हो सुरलोक समान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान॥

—हरिशंकर शर्म्मा

भारतमाता की स्मृति

(१)

तरस-तरस रह जाते हैं सुरगण तुझमें तन धरने को।
परमेश्वर तक प्रकटित होते तुझमें लीलाएँ करने को॥
हैं समर्थ तेरी औषधियाँ कष्ट मृत्यु तक का हरने को।
शुष्क न कोई कर सकता है तेरे यश-रूपी झरने को॥
गिरी दशा तक में तव-गौरव तेज जगत में है चमकाता।
कौन अधम होगा जो भूले तेरी स्मृति हे भारतमाता॥

(२)

सुखप्रद सलिल समीर समय पर सबको तू प्रदान करती है।
प्रकृति निरन्तर तुझे सजाती संगिनि हो सुषमा भरती है॥
भेद-भाव तू नहीं जानती, सबको गोदी में धरती है।
स्वयं यातना तू सहती है, पर औरों का दुख हरती है।
तुझ सी पर उपकारिणि कोई नहीं विश्व में है दिखलाता।
कौन अधम होगा जो भूले तेरी स्मृति हे भारतमाता?

(३)

स्वर्ण भूमि है, रत्न राशि है, कण कण में कमला का घर है।
देती तू है अन्न निरंतर जिस पर जीवन ही निर्भर है॥
बसते हैं रस सभी कहीं, है नमक, कहीं पर तो शक्कर है।
सुन्दर फल फूलों का घर-घर धन देकर होता आदर है॥
नदियाँ पूज्य पवित्र अनेकों—स्पर्शन से ही पाप नशाता।
कौन अधम होगा जो भूले तेरी स्मृति हे भारतमाता?

(४)

ऋद्धि-सिद्धि है, सुख-समृद्धि है, वाणी की बजती है वीणा।
सब कुछ, पर स्वतंत्रता से क्यों रखती है तू वैर प्रवीणा।
इसी कलह से कभी-कभी तू होती ग़ैरों की आधीना।
पाती तिरस्कार बन्धन का बनकर दीना और मलीना।
पर इस तेरे तिरस्कार से दर्शन देने ईश्वर आता।
कौन अधम होगा जो भूले तेरी स्मृति हे भारतमाता?

—"रसिकेन्द्र"

अभिलाषा

मुझसे मिल जाना इक वार।
कहाँ-कहाँ मैं ढूँढ़ रही हूँ, कबसे रही पुकार?
मुझसे मिल जाना इक वार।

नव कुसमों की कुञ्ज-लता में
निशि-तारों की सुन्दरता में।
कुसुमित दल की माधुरता में।
कितना तुमको खोज चुकी हूँ, जिसका वार न पार।
मुझसे मिल जाना इक वार॥

सरिता की गति मतवाली में,
प्रिय वसन्त की हरियाली में,
बाल-प्रभाकर की लाली में,
निशानाथ की उजियारी में।

आशावादी बनकर लोचन, अब तक रहे निहार।
मुझसे मिल जाना इक बार॥
अब देखूँगी उत्थानों में,
देश-प्रेम के अभिमानों में,
अमर सुयश शुभ सम्मानों में।
दर्शन होते ही तज दूँगी हिय बेदना अपार।
मुझसे मिल जाना इक बार॥

—तोरनदेवी शुक्ल "लली"

मातृभाषा

वीणा बज-सी पड़ी खुल गये नेत्र और कुछ आया ध्यान।
मुड़ने की थी देर, दिख पड़ा उत्सव का प्यारा सामान॥
जिसको तुतला-तुतला करके शुरू किया था पहली बार।
जिस प्यारी भाषा में हमको प्राप्त हुआ है माँ का प्यार॥
उस हिन्दूजन की गरीबिनी हिन्दी—प्यारी हिन्दी का।
प्यारे भारतवर्ष—कृष्ण की उस वाणी कालिन्दी का॥
है उसका ही समारोह यह, उसका ही उत्सव प्यारा।
मैं आश्चर्य-भरी आँखों से देख रही हूँ यह सारा॥
जिस प्रकार कङ्गाल वालिका अपनी माँ धन-हीना को—
टुकड़ों की मुहताज आज तक दुखिनी को, उस दीना को,
सुन्दर वस्त्राभूषण-सज्जित देख चकित हो जाती है।
सच है या केवल सपना है, कहती है, रुक जाती है॥

पर सुन्दर लगती है, इच्छा यह होती है कर ले प्यार।
प्यारे चरणों पर बलि जाये कर ले मन भर के मनुहार॥
इच्छा प्रबल हुई माता के पास दौड़कर जाती है।
वस्त्रों को सँवारती उसकी आभूषण पहनाती है॥
उसी भाँति आश्चर्य मोद-मय आज मुझे झिझकाता है।
मन में उमड़ा हुआ भाव बस मुँह तक आ रुक जाता है॥
प्रेमोन्मत्ता होकर तेरे पास दौड़ आती हूँ मैं।
तुझे सजाने या सँवारने में ही सुख पाती हूँ मैं॥
तेरी इस महानता में क्या होगा मूल्य सजाने का।
तेरी भव्य मूर्ति को नकली आभूषण पहनाने का॥
किन्तु क्या हुआ माता! मैं भी तो हूँ तेरी ही सन्तान।
इसमें ही सन्तोष मुझे है, इसमें ही आनन्द महान॥
मुझ-सी एक-एक की बन तू तीस कोटि की आज हुई।
हुई महान सभी. भाषाओं की तूही सिरताज हुई॥
मेरे लिए बड़े गौरव की और गर्व की है यह बात।
तेरे द्वारा ही होवेगा भारत में स्वातन्त्र्य-प्रभात॥
अपने व्रत पर मर मिट जाना यह जीवन तेरा होगा।
जगती के वीरों-द्वारा शुभ पद-वन्दन तेरा होगा॥
तू होगी आधार, देश की पार्लमेण्ट बन जाने में।
तू होगी सुख-सार देश के उजड़े क्षेत्र बसाने में॥
तू होगी व्यवहार, देश के बिछुड़े हृदय मिलाने में।
तू होगी अधिकार, देश-भर को स्वातन्त्र्य दिलाने में॥

—सुभद्राकुमारी चौहान

———

बंगदेश का सौन्दर्य्य

ऊषा की कोमल किरणें पहले जिसको नहलाती हैं।
जिसके पगपर अगणित नदियाँ आकर सलिल चढ़ाती हैं॥
जिसका चरणोदक पयोधि ले सूर्यकरों द्वारा वह जल।
बरसा करके सारे जगपर पावन करता विश्व सकल॥
जहाँ रसा के सुन्दर तनपर लहराती धानी सारी।
जहाँ मलय के झोंके में आती सुगन्ध प्यारी-प्यारी॥
शैलों पर 'सालों' की शोभा नीचे 'शालों' की शैली।
लता-पाश आबद्ध दूर तक तरुओं की अवली फैली॥
विरही के दृग से पर्वत के चश्मे करते हैं छल-छल।
कल्लोलिनी विकल मानस को कहती हाथ उठा कल-कल॥
नारि-केल के विटप-राशि में सुभग सरोवर के तटपर।
यौवन-कलस भार से भोरी सजल कलस लादे कटिपर॥
जहाँ बिहरती है नितम्बनी केश-केत को फहराती।
पानराग रंजित होठों से मन्द-मन्द-सो मुसकाती॥
अथवा जहाँ रसिक बंगाली कोमल स्वर में गाता है।
मंत्र मुग्ध हो निज प्रेयसि को अपनी बीन सुनाता है॥
अथवा नारिकेल कुञ्जों में नारि-केल करता रहता।
रम्भों में रम्भों के सँग में रस का स्रोत जहाँ बहता॥
जहाँ वनों में वृक्ष-डाल पर झूला करता मलयानिल।
आँख-मिचौनी धूप-छाँह हो नीचे खेल रहे हिलमिल॥
जिसकी झिलमिल में चीते का चीतलतन छिप जाता है।
इस प्रकार तम के संगम में मृग भी धोखा खाता है॥

जिसके अंगों पर वहती हैं गंगा-जमुनी धाराएँ।
जिनके कटि में देख चीणता लज्जित होतीं दाराएँ॥
केहरि-गति से वह सर के तट पर जल पीने जाता जब।
जिधर आँख फिर जाती उसकी जंगम जड़ हो जाता सब॥
रंग-रंग के तोता-मैना जहाँ विहरते दल के दल।
चातक और चकोर, कोकिला, मोर, धनेश, लवा, दहियल॥
सरि के तट पर चाहा, वगुला, कछुवा, सारस, आँजन ढेंक।
वतें, लालसर, टीका, चकवा विचर रहे हैं विहग अनेक॥
जहाँ ब्रह्मपुत्रा मानस से निकली हुई वढ़ी आती।
शंकर -जटा जाल से गंगा निकली हुई चढ़ी आती॥
जहाँ गले मिल-मिलकर फिर दोनों सरिताएँ हुईं निहाल।
बिछ है गया उमँगकर भूपर अगणित स्नेह-स्रोत का जाल॥
रज लाई है मिला मिलाकर जीवन में ब्रज-मंडल से।
कृष्णचन्द्र की केलि-भूमि से राधावर के पगतल से॥
रामचन्द्र की अवधपुरी से, ऋषि-मुनियों के आश्रम से।
वीरों की वलिदान-भूमि से ब्रह्मज्ञान के उद्गम से॥
रज, जिसमें अगणित विभूतियाँ मिली हुई हैं सतियों की।
रज, जिसमें समाधियाँ सोई कितने योगी-यतियों की॥
रज, वह जिसमें रक्त मिला है अमर शहीदों वीरों का।
जो स्वदेश-हित हुए निछावर अटलव्रती रणधीरों का॥
रज, जिसको था किलक-किलककर खाया कुँवर कन्हैया ने।
जिसे निकाला मुख से, मोदक खिला, यशोदा मैया ने॥
यह पावन रज त्रिभुज अंक में सिन्धु निकट वे भरलेतीं।
उठ-उठ कितना जलधि माँगता किन्तु नहीं उसको देतीं॥

प्रकृति नटी का रंग-मंच वह रम्य देश प्यारा बंगाल।
वहाँ पहुँचकर नवदम्पति वह, छटा निरख हो गया निहाल ॥

['नूरजहाँ' काव्य से]

—गुरुभक्तसिंह "भक्त"

हिन्दू

(१)

तुम विनाश के लक्ष्य पतन के कलुषित जीवन,
तुम कलङ्क के अङ्क अवनि के पाप पुरातन!
तुम जड़ता के दास, रुदन है सारा साहस!
अरे भूमि पर पड़े हुए हो कायर परबस।
ऐ जीवन के व्यङ्ग कहाँ है वह गौरव, वह मान?
मिटने वाले मिटना ही है क्या दर्शन का ज्ञान?

तुम्हारी सहनशीलता और
तुम्हारा महत् आत्म-बलिदान;
तुम्हारा धर्म-कर्म आचार,
तुम्हारी कला, तुम्हारा ज्ञान।
अरे कायर मिथ्या आलाप
स्वयम् करते अपना अपमान।

अपने ही को धोखा देना, यही असम्भव बात,
अपने ही हाथों से अपना तुम करते हो घात।

(२)

तुम ममत्व की मूर्ति ब्रह्म के सदा उपासक,
निज इच्छा की पूर्ति, वासना के तुम पातक;

भेद भाव के दास, धर्म के अविकल साधक,
विधवाओं के काल और गायों के पालक;
पशुओं पर है दया, मनुष्यों पर है अत्याचार।
व्यङ्ग मात्र है अरे पतित यह सब तेरा आचार!

अरे ये इतने कोटि अछूत,
तुम्हारे बे कौड़ी के दास!
दूर है छूने की ही बात,
पाप है आना इनका पास।
किन्तु फिरभी हो सज्जन श्रेष्ठ
अरे पापी कैसा विश्वास!

दूषिताङ्ग को काट "फेंकना" मत करना उपचार,
मिटनेवाले मिटने का है बस इतना ही सार।

(३)

अरे तपस्वी! आज कलेवर है आडम्बर:
अरे मनस्वी! आज बना मन तृष्णा का घर:
अरे यशस्वी! आज हुआ यश घोर निरादर;
मिटनेवाले! कालचक्र का कैसा चक्कर!
फिर भी तुम जीवित हो अब तक यही अनोखी बात!
पुण्य पूर्वजों का है पर तुम गिरते हो दिन रात!

पाप के प्याले में दो बूँद,
अभी कम हैं तुम सम्हलो आज;
प्रकृति का परिवर्तन है सार,
बिगड़ते बनते हैं सब साज।

परिस्थितियों के हैं प्रतिकूल,
समय से पीछे हीन समाज।

कल समाज के नियम श्रेष्ठ थे किन्तु आज निस्सार ;
सदा परिस्थिति के चक्कर का परिवर्तन है आधार !

(४)

रोनेवाले व्यङ्ग मात्र है सारा रोदन ;
सोनेवाले ! यहाँ क्षणिक है छोटा जीवन ;
खोनेवाले ! शेष रहा केवल अपनापन :
"अपनापन !" क्या कहा ? नहीं इस जगका बन्धन।
अपनापन ! अपनापन किसका ? सोचो ज़रा गुलाम !
अपनेपन पर दावा करना है मनुष्य का काम ॥

किन्तु तुम तो पशुओं से हीन,
तुम्हारा नित होता है ह्रास ;
सदा अविकल हिंसा के लक्ष्य,
अहिंसा पर कैसा विश्वास !
पाप है रक्तपात का नाम
अरे तुम कायरता के दास !

बर्बरता है घृणित, सदा तुम रोते रहे निराश ;
अरे कला के दास कला ही कर देती है नाश !

(५)

जीवित है संसार आत्म-बल से, भुजबल से,
लड़ना ही है इष्ट परिस्थिति चक्र प्रबल से,
सकल विश्व है युक्त नीति से, बल से, छल से,
साहस ही बस पार पा सकेगा रिपु-दल से !

अरे भिखारी, सबल लुटेरों से भिक्षा की चाह ?
ऐ गीता के रचनेवाले यही तुम्हारी थाह !
मूर्ख हतबुद्धि निपट अनजान
भ्रान्ति का यह कैसा बन्धन ?
मिटा देगा सारा अस्तित्व,
तुम्हारा घोर भयानक पतन !
उठो, सम्हलो तुम बनो मनुष्य
व्यर्थ है व्यर्थ तुम्हारा रुदन !
इतना रखना याद तुम्हारा जीवन ही है भार—
अरे हिन्दुओ आँखें खोलो बढ़ता है संसार !

—भगवतीचरण वर्म्मा

बोधि-वृक्ष से—

तुम कौन छिपाए व्यथित हृदय, हो खड़े यहाँ काननवासी ?
किस लिए उदासी छाई है, किसलिए बन गये संन्यासी ?
क्या सोच रहे तुम जीवन के, उस सहचर की वह करुण कथा ?
या दग्ध कर रही है तुमको, उस दया-धाम की विरह-व्यथा ?
क्यों मौन खड़े हो, हे तरुवर, कुछ तो मर्म-स्वर में बोलो।
उलझी है कौन गाँठ मन की, अपने उर का रहस्य खोलो।

हे भाग्यवान, सौभाग्य अहो ! तुम-सा किसने जग में पाया।
जिसके अंचल में रहने को, करुणावतार आतुर आया।
शुद्धोदन का वह रत्न-जटित, सिंहासन विगलित हो क्षण में,
तव चरण-धूलि धर मस्तक पर हो गया धन्य इस जीवन में !

वह दिन कितना मधुमय होगा, जब पल्लव-छाया के नीचे।
वह शांत करुण की मधुर मूर्ति बैठी होगी आँखें मीचे।

करुणा की धारा उमड़ उठी, जिस दिन गौतम-हृदय-स्थल में।
थी दिव्य ज्योति की अमिताभा, उतरी उस दिन जगतीतल में।

वह था संसृति का स्वर्ण-काल, जब अभयदान जगने पाया।
करुणा की अरुण हिलोरों से, जब हृदय हृदय था भर आया।
इस वाह्य रूप का भेद भूल आत्मा ने आत्मा को जाना।
दो बिछुड़े हृदय मिले फिर से, प्राणों ने था सुख पहचाना।

युग-युग हैं तब से बीत चुके, हे मौन, आज कुछ गाओ तुम।
संदेश दया का भूले हम, अब फिर से उसे सुनाओ तुम।

हे बोधि-वृक्ष! तव आँगन में, जगती के नर-नारी आयें।
संतप्त हृदय तव छाया में प्राणों की शीतलता पायें।

—सोहनलाल द्विवेदी

अशक्त सेवी

सेवा तेरे चरण-कमल की।
कैसे करें, बिमोह-मग्न हैं, यद्यपि है आशा मंगल की॥
रचकर प्रबल प्रलोभन न्यारे, बनते हैं सब दुर्जन प्यारे।
फँसकर उनके जटिल जाल में, हैं हम अपना जीवनहारे।
पड़े सड़ रहे हैं मनमारे, ख़ूब कसे हैं बन्धन सारे।
नहीं तनिक भी हिलने पाते हैं यह कपट-कला-खलदलकी॥
सेवा तेरे चरण-कमल की॥ १॥

कोई हत-उत्साह रंक है, कोई निज श्रीहित सशंक हैं।
कोई पड़े प्रपंच पंक में, छिः मानव-कुल के कलंक हैं॥
कोई विद्रोही मयंक है, क्या कोई ऐसे अशंक हैं?
करें विकट बलिदान शान्ति से लघु लालसा छोड़ प्रतिपल की।
सेवा तेरे चरण कमल की॥ २॥
जिनके उर निर्भय निश्चल हैं, मन वच कर्म एक निश्छल हैं।
पूर्ण तेजमय जर्जर तन पर केवल वल्कल वसन विमल हैं॥
और परम प्यारे निर्बल हैं, क्या उनके प्रयत्न निष्फल हैं?
होती है न्योछावर उन पर, सहसा ऋद्धि-सिद्धि छिति-तल की।
सेवा तेरे चरण-कमल की॥ ३॥

—"एक राष्ट्रीय आत्मा"

———

युवा-संन्यासी

गुण-निधान मतिमान सुखी सब भाँति एक लवपुर वासी।
युवा अवस्था बीच विप्रकुल-केतु हुआ है संन्यासी॥
विविध रीति से उस विरक्त को सुहृद बन्धु समझाय थके।
गंगाजी के ज्यों प्रवाह पर उसे न वे सब रोक सके॥
वृद्ध पिता-माता की आशा बिन ब्याही कन्या का भार।
शिक्षा-हीन सुतों की ममता, पतिव्रता नारी का प्यार॥
सन्मित्रों की प्रीति और कालिजवालों का निर्मल प्रेम।
त्याग एक अनुराग किया उसने विराग में तज सब नेम॥
"प्राणनाथ! बालक, सुत, दुहिता" यों कहती प्यारी छोड़ी।
"हाय! वत्स! वृद्धा के धन!!" यों रोती महतारी छोड़ी!!
चिर-सहचरी "रियाज़ी" छोड़ी, रम्य तटी रावी छोड़ी!!
शिखा-सूत्र के साथ हाय! उन बोली पंजाबी छोड़ी॥
धन्य पञ्चनद भूमि, जहाँ इस बड़भागी ने जन्म लिया।
धन्य जनक जननी, जिनके घर इस त्यागी ने जन्म लिया॥
धन्य सती, जिसका पति मरने से पहले हो जाय अमर।
धन्य धन्य सन्तान पिता जिनका जगदीश्वर पर निर्भर॥
शोक-ग्रस्त हो गयी लवपुरी उसकी हुई विदाई जब।
द्रवीभूत कैसे न होय मन? संन्यासी हो भाई जब॥
खिन्न, अश्रुमुख वृद्ध लगे कहने "मंगल तव मारग हो।
जीवनमुक्ति-सहाय ब्रह्मविद्या में सत्वर पारग हो॥"

कुछ मित्रों ने हृदय थामकर कहा कि "प्यारे सुन लेना।
बात अन्त की, आज हमारी, जरा ध्यान इस पर देना॥
समदर्शी ऋषि-मुनियों को भी भारत प्यारा लगता था।
इस कारण यह विद्या-बल में जगसे न्यारा लगता था॥
सर्व त्यागकर महाभाग जो देशोन्नति में दे जीवन।
धन्यवाद देते हैं देवगण भी उसको हो प्रमुदित मन॥
अपनी भाषा, वेष, भाव और भोजन प्यारे भाइन को।
नहीं समझता उत्तमः समझो उससे भला लुगाइन को॥"
"एवमस्तु" कर उच्चारण उसने इन सबके उत्तर में।
कहा "अलविदा" और चला वह मनभावन उस अवसर में॥
लगे वर्षने पुष्प और 'जय' 'जय' की तब हो उठी ध्वनी।
मानो भिक्षुक नहीं, वहाँ से चला विश्व का कोई धनी॥
ज्यों नगरों में होय स्वच्छता जब आता है कोई लाट।
त्यों वन, पर्वत, प्रकृति परिष्कृत हुए समझ माना सम्राट॥
निष्कण्टक पथ हुवा पवन से वारिद ने जल छिड़क दिया।
कड़क तड़ित ने दई सलामी आतपत्र वृक्ष ने किया॥
विहंग-कुल ने निज कलरव से उसका स्वागत-गान किया।
श्वापद शांत हुए, मृग-गण ने दक्षिण में आ मान किया॥
श्रेणी-बद्ध फलित तरुओं ने उसको झुक कर किया प्रणाम।
पुष्पित लता और बिरवोंने कुसुम बिछाये राह तमाम॥
खड़ा हिमालय निज उन्नत मस्तक पर तत्पद धारन को।
हुई तरंगित सुरधुनि तब अभिषेक पुनीत करावन को॥
शिक्षा देती मानों सबको जननी रूप प्रकृति सारी।
विषय-विरक्त ब्रह्म-चिन्तन-रत नर के सब आज्ञाकारी॥

—माधवप्रसाद मिश्र

अन्योक्ति-सप्तक

मैना तू वन-वासनी, परी पींजरे आन,
जान दैव-गति ताहि में रहे शांत सुख मान।
रहे शांत सुख मान बान कोमल ते अपनी,
सब पच्छिन-सरदार तोहि कवि-कोविद बरनी।
कहैं 'मीर' कवि नित्य, बोलती मधुरे बैना।
तौ भी तुझको धन्य, बनी तू अजहू मैना॥ १॥

तोता तू पकड़ा गया: जब था निपट नदान,
बड़ा हुआ कुछ पढ़ लिया तौभी रहा अजान।
तौ भी रहा अजान ज्ञान का मर्म न पाया।
जीवन पर के हाथ सौंप निज घर बिसराया।
कहैं 'मीर' समुझाय तू हाय! अब लौं सोता।
चेता जो नहिं आप, किया क्या पढ़ के तोता॥ २॥

बिल्ली निज पति घातिनी तुझको प्यारा गेह,
खाती है जिसका नमक, उससे नेक न नेह।
उससे नेक न नेह देह पर करती हमला,
खा-खाकर घी दूध कमाई घर की कमला।
कहैं 'मीर' समुझाय, पढ़े तू चाहे दिल्ली।
नमकहरामी चाल न छूटे तुझसे बिल्ली॥ ३॥

बगला बैठा ध्यान में, प्रातः जल के तीर,
मानौं तपसी तप करे, मलकर भस्म शरीर।
मलकर भस्म शरीर तीर जब देखी मछली,
कहै 'मीर' ग्रसि चोंच समूची फ़ौरन निगली—

फिर भी आवे शरण बैर जो तज के अगला ।
उनके भी तू प्राण हरे रे छी ! छी ! बगला ॥४॥

क़ैदी होने के प्रथम, था अलि 'मीर' स्वतन्त्र ।
उसे पवन ने छल लिया, कह के मोहन मन्त्र ।
कहके मोहन मन्त्र तन्त्र-सा फिर कुछ करके ।
उसे गयी ले खींच पास में गहरे सर के ।
पड़ प्रेम में अचल, वहाँ लकड़ी का भेदी ।
था जो कोमल कमल, बनाया उसने क़ैदी ॥५॥

जाने कौन्हों शमन हैं, मत्त मतंग न मान ,
हाय दैववश सिंह सो पर्‌यो पींजरे आन ।
पर्‌यो पींजरे आन श्वान के गन ढिग भूँकैं ।
बिहँसैं ससा, सियार कान पै आके कूकैं ॥
'मीर' बात है सत्य, लोक में कहिये स्याने ।
का पै कैसो समय कबै परिहै, को जानै ॥६॥

कोयल तू मन मोह के, गई कौन से देस,
तो अभाव में काग-मुख लखनो परो भदेस ।
लखनो परो भदेस बस तो ही सो कारो,
पै बोलत है बोल महा कर्कस कटु न्यारो ।
कहैं 'मीर' हे दैव, काग को दूर करो दल ।
लावो फेर वसन्त मनोहर बोले कोयल ॥७॥

—सैयद अमीरअली 'मीर'

———

आत्म-पुकार

जिनके शुभ्र स्वच्छ हिय-पट पर जग-विकार का लगा न दाग।
भरा हुआ है अविचल जिनमें केवल मातृदेवि अनुराग ॥
जिनकी मृदु मुसकान सरलता विकसित गालों की लाली।
देख-देख सुन्दर फूलों को रचता है जग का माली ॥
बँधी हुई मिट्टी को जिसने अब तक नहीं पसारा है।
जिनको हाथों से पैरों का अधिक अँगूठा प्यारा है ॥
भावी भारत-गौरव-गढ़ की सुदृढ़ नींव के जो पत्थर।
आर्यदेश की अटल इमारत का बनना जिन पर निर्भर ॥
उन्हीं अनूठे कानों को यह मेरी स्वरमय आत्म-पुकार।
पहुँचे आशलता की जड़ में जिसमें होय शक्ति-संचार ॥

—माधव शुक्ल

उन्माद

(१)

जब नहीं आकर किया तुमने हृदय में वास,
हो अधीर स्वयं चला तब वह तुम्हारे पास।
पर न तुझको पा सका की यदपि बहुत तलाश,
लौट आया अन्त में होकर अतीव हताश ॥

(२)

दृष्टिगोचर हो न तुम कहते सभी मतिमान,
सत्य हम भी क्यों न फिर यह बात लेते मान।

लोचनों को मूँदकर करने लगे हम ध्यान,
हाय, तो भी कुछ हमें न हुआ तुम्हारा ज्ञान ॥

(३)

चित्त देकर और सुन लो एक दिन की बात,
सो रहे थे हम पड़े बीती बहुत थी रात।
सामने तुम हो खड़े, ऐसा हुआ कुछ ज्ञात,
किन्तु जब आँखें खुलीं तब हुआ वज्र-निपात ॥

(४)

खिलखिलाकर हम कभी हँसते बहुत साह्लाद,
और रोते हैं कभी पाकर अतीव विषाद।
प्रेम-वश करते तुम्हारा हम सदा गुणवाद,
लोग क्यों कहते भला हमको हुआ उन्माद ॥

(५)

हो निराश हृदय हुआ है अब अतीव अधीर,
किन्तु सूखा जा रहा है क्यों सदैव शरीर ?
लोचनों को क्या व्यथा है जो बहाते नीर ?
क्या इन्हें भी लग गया है, प्रेम का वह तीर ?

(६)

सोच लो कब के बने हैं हम तुम्हारे दास,
क्यों हमें तुम कर रहे फिर बार बार निराश।
बस तुम्हीं कह दो जहाँ पर है तुम्हारा वास,
है पहुँचता प्रेम का भी क्या वहाँ न प्रकाश ?

(७)

कर रहे कब से तुम्हारे हम गुणों का गान,
पर तुम्हें भी क्या कभी आया हमारा ध्यान ?
दो बता हमको तुम्हारा है जहाँ संस्थान,
किस तरह होती वहाँ है प्रेम की पहचान ?

(८)

कुछ समझते हो परम शास्त्रज्ञ ज्ञान-निधान ?
पर नहीं उनको तनिक भी है तुम्हारा ज्ञान।
देखकर यह बन गये हम अज्ञ मूढ़ महान,
हाय ! तो भी चित्त में न हुआ तुम्हारा भान॥

(९)

यदपि अब तक है हुई तुमसे नहीं पहचान,
किन्तु तुम सहृदय सरस हो है यही अनुमान।
अब अधिक जाता सहा न वियोग-दुःख महान;
दे हमें दर्शन करो अब तो कृतार्थ सुजान!

—गोपालशरणसिंह

रूप-राशि

ये प्रसून हैं—यौवन के सुख-क्षण बिखरे सुकुमार;
मृदु ऋतुराज साज है इस जीवन का सुखमय सार।
इन सुमनों को—जो मदिरा के हैं कोमल अवतार;
अधर-नीड़ में छिपी कोकिला सुख से रही पुकार।

धूममयी-सी संध्या जो है, उदय अस्त से हीन।
उसके अविदित धुँधले-पन से, है यह विश्व मलीन॥

पथ-विहीन जल-राशि सदृश है यह भविष्य का भार:
कितनी आकांक्षा है पर दिन हैं केवल दो-चार।
पर छोटे क्षण!—वे हैं विस्तृत आशाओं के द्वार:
जीवन का है तत्व—एक मुसकान—एक चीत्कार!

परिवर्तन जीवन है, अथवा जीवन का नाम:
केवल रात्रि-दिवस ही में है वर्षों का विश्राम।

एक किरण जो प्राची में लाती है उषा नवीन:
संध्या के चञ्चल क्षण में होती है वही विलीन।
जीवन ही क्रीड़ा है, प्रेयसि देखो उसके रूप:
हम तुम हैं दो विन्दु—परस्पर हैं प्रतिविम्ब अनूप।

जीवन-उपवन में मिल जावें, हम हों एकाकार;
ये प्रसून हैं—यौवन के सुख—क्षण बिखरे सुकुमार।

—रामकुमार वर्म्मा

———

परिवर्तन

(१)

कहाँ आज वह पूर्ण-पुरातन, वह सुवर्ण का काल?
भूतियों का दिगन्त-छवि-जाल,
ज्योति-चुम्बित जगती का भाल!
राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन विस्तार!

स्वर्ग की सुषमा जब साभार,
धरा पर करती थी अभिसार।
प्रसूनों के शाश्वत-शृङ्गार,
(स्वर्ण-भृङ्गों के गन्ध विहार)
गूँज उठते थे बारम्बार,
सृष्टि के प्रथमोद्गार।
नग्न सुन्दरता थी सुकुमार,
रिद्धि औ सिद्धि अपार।
अये, विश्व का स्वर्ण-स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,
कहाँ वह सत्य वेद विख्यात?
दुरित, दुख, दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा-मरण-भ्रूपात!

(२)

हाय! सब मिथ्या बात—
आज तो सौरभ का मधुमास,
शिशिर में भरता सूनी-साँस?
वही मधु-ऋतु की गुञ्जित डाल,
झुकी थी जो यौवन के भार।
अकिञ्चनता में निज तत्काल
सिहर उठती,—जीवन है भार।
आज पावस नद के उद्गार,
काल के बनते चिन्ह कराल;
प्रात का सोने का संसार,
जला देती संध्या की ज्वाल!

अखिल यौवन के रंग उभार,
हड्डियों के हिलते कंकाल :
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, काँस, सिवार :

गूँजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार।

(२)

आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात।
चार दिन सुखद चाँदनी-रात
और फिर अन्धकार, अज्ञात।

शिशिर-सा झर नयनों का नीर,
झुलस देता गालों के फूल।
प्रणय का चुम्बन छोड़ अधीर
अधर जाते अधरों के भूल?

मृदुल होठों का हिम जल-हास,
उड़ा जाता निःश्वास-समीर
सरल भौहों का शरदाकाश,
घेर लेते घन घिर गम्भीर।

शून्य साँसों का विधुर वियोग
छुड़ाता अधर मधुर, संयोग :
मिलन के पल केवल दो-चार
विरह के कल्प अपार!

अरे, वे अपलक चार-नयन
आठ आँसू रोते निरुपाय;
उठे-रोवों के आलिङ्गन
कसक उठते काँटों से हाय!

(४)

किसी को सोने के सुख साज
मिल गये यदि ऋण भी कुछ आज
चुकालेते दुख कल ही ब्याज
काल को नहीं किसी की लाज

विपुल मणि-रत्नों का छबि-जाल
इन्द्र-धनु की-सी छटा विशाल—
विभव की विद्युत ज्वाल
चमक छिप जाती है तत्काल;

मोतियों जड़ी ओस की डार
हिला जाता चुपचाप बयार!

(५)

खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण;

अभी उत्सव औ हास हुलास
अभी अवसाद अश्रु उच्छ्वास!

अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निश्वास,

डालता पातों पर चुप-चाप
ओस के आँसू नीलाकाश :
सिसक उठता समुद्र का मन
सिहर उठते उडगन !

(६)

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान पतन !
अहे वासुकि-सहस्रफन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर :
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर !
शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर !
मृत्यु तुम्हारा गरल-दन्त, कञ्चुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र-कुण्डल
दिङ्मण्डल !

— सुमित्रानन्दन पन्त

आँसू

हे मेरी आँखों के आँसू ! हे इस जीवन के इतिहास !
छलक पड़ो मत, रहो अन्त तक, उमड़े इस दुखिया के पास।
हे करुणा के चिह्न ! अहो अभिलाषा की नीरव भाषा।
मत छलको है टँगी हुई तुम पर ही मेरी शुभ आशा।
हृदय-वेदना के परिचायक ! निराधार के हे आधार !
अन्तस्तल को धोनेवाले ! हे मेरे सुमुक्त उद्गार।
हे मेरी असंख्य भूलों के मूर्तिमान सच्चे अनुताप।
शीतल करते रहो सदा इस दग्ध हृदय का भीषण ताप।
हे कितनी घटनाओं की स्मृति ! हे मेरी आँखों की लाज !
क्या जाने क्या, तुम्हें छलकता, देख कहेगा क्षुब्ध-समाज ?
कितने स्नेह, शोक के हो उपहार-तुल्य तुम मेरे पास ?
बात-बात में यों मत छलको, उठ जावेगा फिर विश्वास !!
बल न उठे जिससे सहसा वह बना रहे सुखदायक शान्त।
रक्खा है प्रज्ज्वलित प्रेमको, तुममें डुबा, अहो उद्भ्रान्त ॥
बार-बार इस नीरस जग को, अपना रूप न दिखलाओ।
उषाकाल के तारागण से, इन नयनों में छिप जाओ।
हे मेरे इस जीवन भर की कठिन कमाई ! छिपे रहो।
आवश्यकता नहीं तुम्हारी आई भाई ! छिपे रहो !
नहीं सफ़ाई देने की बारी आई है छिपे रहो !
नहीं झलक अब तक प्रियतम ने दिखलाई है छिपे रहो ॥
यों ही ढलक पड़ोगे तो मिट्टी में मिल जाओगे यार !
'लोचन जल रहु लोचन कोना,' यही विनय है बारम्बार ॥

—मोहनलाल महतो

आँसू की बूँद के प्रति

रम्य उषा के नव कलरव में, तू क्या करने आया ?
मेरे सोते दृग-जल को क्या: है चाहता जगाया !
क्या मुझ-सा ही जोड़ रहा तू, तार स्वप्न का टूटा ?
बता-बता, क्या तेरा घर भी गया रात में लूटा !

निष्कलंक निष्पाप विमल तन !
किस अनिष्ट के डर से ?
नव प्रभात में मूक रुदन यह
करने निकला घर से ?
जीवन के तममय प्रदेश में
चलते-चलते थककर ।
तुझ-सा मैं भी भूल रहा हूँ
आशा के पल्लव पर ।
रंग-भरी तितली के दर्पण
जग के जीवित मोती
प्राण हथेली पर हों जिसके
हार न उसकी होती !

लाख हवा का झोंका आये अब न जरा घबराना ।
दिव्य ज्योति वह दीख रही है जिसमें है मिल जाना ॥

—श्रीनाथसिंह

———

देव-देव

(१)

शशि बन प्रकट हुए हो मित्रता की देव !
एकता व्यवस्थित हुई है दोनों तन में !
सारी रजनी भर सुषुप्ति में समावृत हो,
आगई अभिन्नता तुम्हारे-मेरे मन में।
गूँज उठे भ्रमर, विकास कमलों का हुआ,
लुब्ध चकवे हैं चकवी के सम्मिलन में।
सारे धरा-व्योम के प्रभात का रहस्य आज,
प्रकट हुआ दो हृदयों के उपवन में।

(२)

आप गगनस्थित हैं, मैं हूँ धरणी परही,
तेजोमय आप मैं तमिस्र का ही जाया हूँ।
आपका प्रसन्न वदनारविन्द दीप्त, किन्तु,
मैं तो पूर्व-काल की नितान्त ध्वान्त-छाया हूँ।
तो भी यह मधुर, रहस्य-पूर्ण संगम है,
मत समझो कि यों ही स्वाँग भर लाया हूँ।
उत्थित युवापन की उन्नत तरङ्ग द्वारा,
मैं तो बस आपके करों में खिंच आया हूँ॥

(३)

ओजोमयी राशि भवदीय गरिमा की देव !
संसृति विजयिनी विभूति दिखलाती है।

मंजुल मयूखों की प्रशस्ति का प्रचार देख,
सुयश-धृता-सी विदिशा भी दृष्टि आती है।
जीवन-समीर की हिलोर मुझे शीघ्रता से,
आपके सकाश में स-हास खींच लाती है।
बरस रहा है वारिवाह-सा प्रकाश-पुञ्ज,
सार-हीन भिन्नता की भीत ढही जाती है॥

(४)

एकाकार होते एक पाता हूँ प्रकाश ऐसा,
वीत-भावना के भूत-प्रेत भाग जाते हैं।
सारा भूत-काल एक क्षण में विलीन होता,
भावुक भविष्य के सुदृश्य दिखलाते हैं।
जागृति का परिधि-प्रसार इस भाँति होता,
मेरी चेतना में वह दिव्य दृश्य आते हैं।
जीवन-स्वतन्त्रता के चारु अँग-अंग मुझे,
गंगा-गत-सूचिका-समान दृष्टि आते हैं॥

(५)

होता हूँ स्वतन्त्र ऐसे जीवन-वहित्र से मैं,
शासन-विहीन और अति दुखदायी जो।
जिसमें न डाँड़-पतवार का विधान ऐसा,
देता हो अनिश्चित दिशाओं को विदाई जो।
ऐसी तरणी से मुक्त पाता अपने को आज,
अब लौं यथा तथा है डगमग आई जो।
जिसको हवा ने जहाँ चाहा वहीं मोड़ दिया,
देती थी भँवर के समीप ही दिखाई जो॥

(६)

मुक्त हुआ आज ऐसे सृष्टि के विधान से जो,
मुझको बनाये कठ-पुतली समान था।
तन्त्र में अजस्र ही फँसा मैं घूमता था ऐसे,
जिससे स्वतन्त्रता का होता अपमान था।
वेष सूत्रधार का धरा था जिसने कि वही,
मानो महा उच्च विश्व विभव-वितान था।
ऐसी जगती में रहने का, रखने का मुझे,
मुझको गुमान, आपको न अनुमान था॥

—"अनूप"

गीत

आयी मलय समीर री।
किस सुदूर अज्ञात दिशा से ले भ्रमरों की भीर री॥
आयी मलय समीर री।
अलस शिथिल कुसुमित यौवन तन
मधु-शैया पर मुग्ध अचेतन
सिहर पराग कणों-सा उन्मन
बिखर गयी सुषमित अलकों की मोती-भरी लरी
रस बूँदों का मृदु सनेह ले
दीपक बार कुसुम कलियों के
फैला परिमल का प्रकाश रे
बिटपी-बाल खड़ी स्वप्नों की मद-सरिता के तीर री

वनदेवी के नत्र अंचल सम
डोल रहा शुचि श्वेत गगन नम
खुला पयोधर युग रवि-शशि सम
पुरुष-प्रकृति जीवन बन कितने ढुलक रहे पय-हीर री।

—रामेश्वर शुक्ल "अञ्चल"

पीपल

कानन का यह तरुवर पीपल
युग-युगसे जगमें अचल अटल
ऊपर विस्तृत नभ-नील नील, नीचे वसुधा में नदी नील
जामुन, तमाल इमली, करील
जल से ऊपर उठता मृणाल, फुनगी पर खिलता कमल लाल
तिर-तिर करते क्रीड़ा मराल
ऊँचे टीले से वसुधा पर, झरती है निर्झरणी झर-झर
हो जाती बूँद-बूँद झर कर
निर्झर के पास खड़ा पीपल, सुनता रहता कलकल छलछल
पल्लव हिलते ढलपल-ढलपल
पीपल के पत्ते गोल-गोल
कुछ कहते रहते डोल-डोल
जब-जब आता पञ्छी तरुपर, जब-जब जाता पञ्छी उड़कर
जब-जब खाते फल चुन-चुनकर
पड़ती जब पावस की फुहार, बजते जब पञ्छी के सितार
बहने लगती शीतल बयार
तब-तब कोमल पल्लव हिल-डुल—गाते सरसर-मर्मर मञ्जुल

लख लख, सुन-सुन विह्वल बुलबुल
बुलबुल गाती रहती चह-चह, सरिता गाती रहती बह बह
पत्ते हिलते-रहते रह रह

× × ×

जितने भी हैं इसमें कोटर
सब पञ्छी गिलहरियों के घर
संध्या को जब दिन जाता ढल, सूरज चलते हैं अस्ताचल
कर में समेट किरणें उज्ज्वल
हो जाता है सुनसान लोक, चल पड़ते घर को चील कोक
अँधियाली संध्या को बिलोक
भर जाता है कोटर-कोटर, बस जाते हैं पत्तों के घर
घर-घर में आती नींद उतर
निद्रा ही में होता प्रभात, कट जाती है इस तरह रात
फिर वही बात रे वही बात
इस वसुधा का यह वन्य प्रान्त
है दूर अलग एकान्त, शान्त
हैं खड़े जहाँ पर शाल, बाँस, चौपाये चरते नरम घास
निर्झर, सरिता के आस-पास
रजनी-भर रो-रोकर चकोर, कर देता है रे रोज भोर
नाचा करते हैं जहाँ मोर
है जहाँ वल्लरीका बन्धन, बन्धन क्या, वह तो आलिङ्गन
आलिङ्गन भी चिर-आलिङ्गन
बुझती पथिकों की जहाँ प्यास निद्रा लग जाती अनायास
है वहीं सदा इसका निवास।

—गोपालसिंह नेपाली

यौवन की वेला

अलि, झूम झूम आयी वेला यौवन की !
तू देख अली, कचनार कली,
यह नयी नयी खुल खेल रही।
अली लूट रही यौवन बहार जीवन की !
अलि झूम झूम आयी वेला यौवन की !
सखि, मञ्जु मञ्जरी मधु रसाल,
फैले किसलय के जाल जाल,
द्रुम दल पुलकित, लतिका मुकुलित:
अलि, सिहर उठीं वे डाल डाल मधुवन की।
अलि, झूम झूम आयी वेला यौवन की।
कचकल कलियाँ खिल खिल खुलतीं,
नित नयी नयी आँखें मिलतीं,
रति सुख विह्वल, आशा चंचल,
सालस सरसाती विश्व, सुरभि उपवन की।
अलि झूम झूम आयी वेला यौवन की !
मँडराते मोहित मत्त भृङ्ग,
विकसित कुसुमों के अङ्ग-अङ्ग,
उर में उमङ्ग, नूतन तरङ्ग,
निखरी तरुणाई, अली आज कन कन की।
अलि झूम झूम आयी वेला यौवन की॥
मधुमयी वसन्त सखी आली,
सरसों सौरभ में मतवाली,
यौवन लहरी से वह सिहरी,

मधु भार भरी, मद-मन्द पवन उपवन की।
अलि झूम-झूम आयी बेला यौवन की॥
यह री बसन्त-बेला आली,
पर सूनी-सी बिन वनमाली,
कोकिल-कूजित, मधुकर-गुञ्जित,
पर हूक उठी री पीर व्यथित जीवन की।
अलि झूम-झूम आयी बेला यौवन की॥
अलि, पुलक जाल में बन्दी तन,
आहत हरिणी का यौवन,
मैं मदन बाण सहती अजान,
क्यों सिसक सिसक गाऊँ गाथा कसकन की!
अलि झूम-झूम आयी बेला यौवन की!

—"नरेन्द्र"

शिशु-चित्रकार

तू बड़ा चतुर शिशु चित्रकार,
तेरी महिमा जग में अपार।
नख रेखाएँ खींच खींच,
तू चित्र बनाता आँख मीच।
दृश्य में हैं आकृति अनेक,
तेरी रहती बस यही टेक।
होकर सजीव निर्जीव जीव,
प्रकटावें नव कौतुक अतीव॥

दर्शकगण तो रहते अवाक,
तव ओर एकटक ताक-ताक ।
घर-बाहर का सम्बन्ध-वेश,
रखता न किन्तु विज्ञान लेश ।
तव विगत जन्म के सहज कृत्य,
क्या करते सम्मुख सदा नृत्य !
जिनके चित्रण में बार-बार,
आनन्द तुझे मिलता अपार ॥
भावी जीवन की नयी क्रान्ति,
या तो उपजाती हृदय-भ्रान्ति ।
जिनका तू बना विचित्र रूप,
लीला रचता है नित अनूप ।
चाहे जो हों तव सरल भाव,
निज प्रेमी जन के बढ़ा चाव ।
अपनी छवियों में छटा डाल,
हर एक बंक में चाल, ताल ॥

—चन्द्रभानुसिंह

रज-कण

(१)

कहिये कन कैसे परे इत हौ,
किमि दीखत ऐसे अहो हत-चेत से,
लयलीन अचंचल सोच कछू,
कबहूँ उठि ऊँची उसासन लेत से :

रहते नृप सीस किरीटन पै,
वह लोटत क्यों तट आनि अचेत से ?
सहते सिर सीतरु घाम घनो,
इमि मौन सँकेतन सीख सुदेत से ॥

(२)

दिन एक वे ऐसे हमारे हते,
जब सारे बँध रहे नेह के सूतन,
पगि प्रेम अलौकिक एक भये,
उर राख्यो न रञ्च सुभेद के भूतन ;
जुगलेश जू आनि डटे जो कहूँ ,
चले रञ्च न बाहु बलीन की बूतन ।
मन आनत ही मिली एक सों एक,
किये किते धाम धरा बिच नूतन ॥

(३)

पर काल के एरे कुचक्र महा !
निज चक्र को ऐसो प्रभाव दिखायो,
करि तेरह तीन सिला तें हमैं,
बनजारन ज्यों बन-जार फिरायो ;
जुगलेश जू ऐसो रँग्यो रँग द्वेष में,
आपुहि एकन एक मिटायो ।
सरिता, नद, नार भ्रमाय किते,
इत आनि अनाथ ज्यों तोर गिरायो ॥

(४)

इतहू पै अरे नहिं शांत भयो,
हम यों न परे तट पै रहि पाये।
उतहूँ ते उठाय वगूलन लै,
अति नीके भ्रमाय अकाश उड़ाये।
विपदा 'जुगलेश' जू जेती सहीं,
उन ओर न आँगुरि पोर गिनाये।
जगजीवन ऐसो जलील कियो,
किरी आँख की ह्वै सबकी नभ छाये॥

-- युगुलकिशोर मिश्र "युगुलेश"

भारतेन्दु के प्रति

[१]

तू स्वर्ग नहीं है; राजा वलि का मन है।
तू नहीं कंस का राज, नन्द का धन है।
तू छत्र नहीं है, सुन्दर मोर-मुकुट है।
काशी नगरी में वृन्दावन का तट है॥
इस सुन्दरता की आग लगी आँखों में।
जलती अब तक वह दीप-शिखा लाखों में।

[२]

देखा तूने अर्जुन का रथ है खाली!
बस वहीं झपटकर उसकी ध्वजा उठाली।

चल पड़ा राष्ट्रभाषा का रथ इठलाता—
अभिमानी के मस्तक पर ठेस लगाता।
उस कठिन समय में किसने यह रथ हाँका ?
तू कुरुक्षेत्र का बाँका बीर लड़ाका।

[३]

कण्टक-बन से कलियों का स्वागत आया।
लख पड़ा ब्रह्म, कट गई विश्व की माया।
अब कौन चले सञ्चित धन-राशि लुटाने।
तू दौड़ गया प्राणों की भेंट चढ़ाने।
इस बरबादी पर मजनू को मति हारी।
इस निर्धनता पर क्रीट-मुकुट बलिहारी।

[४]

तू एक किरण है उज्ज्वल जिसकी छाया।
तू अमर शक्ति है नश्वर तेरी काया।
तू जहाँ कहीं है स्वर्गिक परियाँ जावें।
तेरे पथ में पाटल का फूल बिछावें॥
तव पद-चिह्नों पर सुर भी चँवर हिलावें।
तेरे मस्ताने सुन-सुनकर सुख पावें।

—रामसिंहासनसहाय "मधुर"

शब्दार्थ और टिप्पणियाँ

प्रबोधिनी—उत्पल = नीलकमल। पंडुर = एकपक्षी। मग्गर्जी = मलित, दलित।

दीन-निहोरा—कौतुक = तमाशा।

कन्हैया—अधोमुख = नीचा मुख। प्रेमाचल = प्रेम का पहाड़। गिरि गोवर्द्धन उठाने का सङ्केत करते हुए इस समय प्रेमाचल उठाने की प्रार्थना की गई है।

अन्वेषण—कुञ्ज = लतागृह। वतन = मातृ-गृह। चमन = बाग़।

सिकन्दर—ईसवी सन् से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व का, ग्रीस देश का सम्राट, जिसका राज्य-प्रबन्ध बहुत सुव्यवस्थित था, जो संसार का एक महान् विजेता माना जाता है और जिसने अपने युद्ध-कौशल से अपने राज्य की बहुत वृद्धि की।

फ़रहाद—फ़ारस का गणित का प्रोफ़ेसर, जो राजकुमारी शीरीं पर आसक्त था। जब बादशाह ने सुना कि फ़रहाद शीरीं के पीछे पागल हो रहा है, तो उसने उसे शीरीं की इच्छा बताकर ऐसा काम सौंपना चाहा, जो वह न कर सके। उसने कहा कि शीरीं चाहती है कि तुम पहाड़ खोद कर ऐसा महल तैयार करो, जिसमें एक भी खम्भा न हो। उसमें दूध की नहर निकालो। फ़रहाद ने इसे भी स्वीकार कर लिया। जी-जान लड़ाकर उसने इस काम में सफलता भी पायी। परन्तु तब बादशाह डरा कि अब तो हमको इससे शीरीं की शादी करनी ही पड़ेगी। निदान, उसने एक स्त्री को शीरीं की दासी बना के कहला भेजा कि जाओ फ़रहाद से कह दो कि जिसके पीछे तुम यह सब कर रहे हो, वह तो मर

गयी। फ़रहाद के हाथ में उस समय कुदाली थी। ज्योंही उसने यह सुना, त्योंही अपने सिर पर कुदाली मार कर आत्म-हत्या कर ली। जब शीरीं ने यह संवाद सुना, तो वह उसके शव के पास गयी। उसके हृदय पर इस घटना का इतना प्रभाव पड़ा कि उसका भी वहीं देहान्त हो गया। दोनों की समाधियाँ एक ही जगह पर अब तक बनी हैं।

सुहराब—ईरान के सरदार ज़ाल का पुत्र, जिसका नाम रुस्तम था, सोहराब का पिता था। रुस्तम का विवाह सीस्ताँ के राजा की पुत्री से हुआ था। रुस्तम अपनी उस पत्नी को उसके पिता के यहाँ ही छोड़ आया था। वहीं सोहराब का जन्म हुआ। परन्तु उसकी माँ ने सोचा कि अगर रुस्तम को इस बात की खबर लग जायगी, तो वह अपने बच्चे को ले जायगा। इसलिए उससे ज़ाहिर यह किया कि एक दुर्बल लड़की हुई है। वयस्क होने पर वह भी अपने पिता के समान ही पहलवान हुआ! माता से जब उसने पिता का परिचय पाया, तो उसके मन में उससे मिलने की उत्कण्ठा प्रबल हो उठी। सोहराब को तूरान की एक लड़ाई में संयोग से ईरान जाना पड़ा। उसका विश्वास था कि ऐसे अवसर पर मेरा पिता भी अवश्य आयेगा। हुआ भी ऐसा ही। रुस्तम ईरानवालों के आग्रह से उससे लड़ा। पहली बार कुश्ती बराबर रही, दूसरी बार सोहराब विजयी हुआ; परन्तु तीसरी बार उसे इतनी भयानक चोट लगी कि वह मर गया। मृत्यु के कुछ समय पूर्व घायल हो जाने की दशा में सोहराब ने कहा था कि इसका बदला मेरा पिता रुस्तम लेगा। रुस्तम इस पर चकित हुआ। जब सोहराब ने अपना ताबीज़ दिखलाया तो रुस्तम को खयाल आया कि ऐं! यह ताबीज़ तो सचमुच मेरा ही दिया हुआ है। तब उसे विश्वास हुआ कि यह मेरा ही पुत्र है। वह बहुत रोया। वहीं सोहराब की समाधि बना दी गयी।

क्रीसस (क्राइसस)—एशियामाइनर का बादशाह, जो अपने आपको संसार में सब से अधिक सुखी मानता था। कुछ समय बाद उस पर फ़ारस के बादशाह ने चढ़ाई कर दी, और वह पराजित होकर बन्दी हो गया। विजयी राजा ने आज्ञा दी कि इसे जीता ही जला दो। चिता तैयार की गयी। जलाने के लिए जब वह उस स्थान पर लाया गया, तो उसने 'सोलन' नामक साधु को पुकारा। पूछा गया कि सोलन को क्यों पुकारते हो ? तब उसने बतलाया कि मैंने उससे कहा था कि संसार में सबसे बढ़कर सुखी मैं हूँ। उत्तर में उसने कहा था कि जीवन भर देखते चलिये, कभी-न कभी तो आपको यह मालूम ही हो जायगा कि आप कितने सुखी हैं। आज उसके कथनानुसार मुझे मालूम हुआ कि मैं कितना सुखी हूँ। बादशाह ने जब ये बातें सुनीं, तो उसने उसे छोड़ दिया।

महमूद—अरब के क प्रसिद्ध धर्माचार्य्य, जिन्होंने मुसलिम धर्म का प्रवर्तन किया।

मंसूर—इनका नाम हुसैने-हल्लाज था। इनका जन्म ईरान के बैज़ा नामक गाँव में हुआ था। ये बड़े सदाचारी, तपस्वी और परम ज्ञानी थे। ईश्वरीय रहस्य के मर्मज्ञ विद्वान, उच्चकोटि के कवि और व्याख्याता थे। भावावेश में एक बात इन्होंने सूफ़ी-सम्प्रदाय के विरुद्ध कह दी थी, जिसका विरोध इतना बढ़ा कि अन्त में एक वर्ष क़ैद भोगने के बाद इन्हें दो बार क्रमशः एक-एक हज़ार कोड़े खाने की सज़ा दी गयी। मंसूर ने जब यह सज़ा भी सहन करली, तो उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया।

भिक्षुक का दान—तण्डुल = चावल।

बलि = विरोचन नामक दैत्य के पुत्र, जो राजा थे, जिनको भगवान

विष्णु ने, बावन अंगुल का रूप धारणकर, तीन पग पृथ्वी माँगकर छलने की चेष्टा की थी।

गज = हाथी, जिसे ग्राह ने ग्रस लिया था और जिसकी पुकार पर भगवान उपहने दौड़ पड़े थे।

भृगु = परशुराम के वंश के एक मुनि, जिन्होंने भगवान विष्णु को लात मारी थी। ये शिव-पुत्र भी माने जाते हैं।

समर्थन—तरु-कोटर = वृक्ष की खोखल। निरीह = चेष्टा-रहित, उदासीन।

पद—अपबस = बेबस। त्रिभंगी = तीन जगह से टेढ़ा, तीन मोड़ का। अलक = केश-गुच्छ।

जीवन-घट—छीज रहा है = क्षीण हो रहा है। सँजोया = संचय किया। आत्म-वंचना = आत्मा के साथ ठगी। प्रवृत्ति = लिप्त रहने का भाव। निवृत्ति = अप्रवृत्ति, हटने का भाव। धवल = उज्ज्वल, श्वेत।

जिज्ञासा—जिज्ञासा = कौतूहल, जानने की इच्छा। भग्न = टूटा हुआ, खण्डित। राग = प्रीति। निभृति = निर्जन। निलय = गृह।

अनुरोध—अन्तर्नाद = भीतर का स्वर। आह्वान = बुलावा निमंत्रण। मंजुल = सुन्दर, मनोहर।

मन की भावना—आहूत = निमंत्रित। तत्व = तथ्य, सार निरत = नियुक्त, लगा हुआ। अवधूत = अपमानित।

लक्ष्मी-पूजा—आनन-मोरि=मुँह मोड़कर । थिराय=स्थिर, रहना ।

ब्रजभाषा, हिन्दी, प्रार्थना—ललित=कोमल, सुन्दर । कलित=कथित । केलि=क्रीड़ा । ह्याँ=यहाँ । विसद (विशद)=स्वच्छ; शान्त । बिसाल (विशाल)=बड़ा । औघट-घाट=नदी में उतरने का घाट-रहित स्थल ।

कविते—रञ्जित=प्रीति करनेवाली । विधायिनी=नियम बनानेवाली । मनोज्ञता=मनोहरता । कमनीयता=सुन्दरता । अन्तराल=अभ्यन्तर, बीच, मध्य । प्रयाण=गमन करना, प्रस्थान । मनोरम=मन को रमानेवाला । दोषाकर=दोष-समूह । किमाकारक=किस स्वरूपवाली । ताण्डव=नृत्य, आँखें मटकाना । यमक=शब्दालंकार-भेद, जोड़ा । अनुरक्त=प्रसन्न, संतुष्ट । परिश्रान्त=सब तरह से थका हुआ । अजेय=जो जीता न जा सके । विडम्बना=अपमान-जनक मज़ाक़ । रहस्य=छिपाने योग्य, गोप्य ।

गंगा-गौरव—सुकृत=अच्छी तरह किया हुआ । समृद्ध=शक्ति, सम्पत्ति, मंगल । त्रिविक्रम=वामनावतार, विष्णु । साका=(शाका) संवत्सर विशेष । तोम=घिराव, ढेर । तुंग=चोटी । राका=एक राक्षसी, जो शूर्पणखा और खर की माता थी । सागर कुमार—अयोध्या के सूर्यवंशी राजा सगर के पुत्र, जो उनकी दूसरी स्त्री से उत्पन्न हुए थे, जिनकी संख्या ६० हजार थी । अश्वमेध यज्ञ करने पर जब सगर का घोड़ा इन्द्र ने चुरा लिया और पाताल

में जा छिपाया, तब ये पुत्र ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पाताल पहुँचे। वहाँ उन्होंने जब उस घोड़े को महर्षि कपिल के यहाँ बँधा पाया, तो वे बिगड़ खड़े हुए। मुनि ने अपमान का अनुभव कर, क्रुद्ध होकर ऐसा श्राप दिया कि वे सब भस्म हो गये।

भगीरथ—अयोध्या के एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा, जो राजा दिलीप के पुत्र थे और जो घोर तपस्या से गंगा को पृथ्वी पर ले आये थे।

भृंगीगन=शिव के गण। **छाजतै**=शोभा देना ही। **गाजतै**=गरजना ही। **करकनि**=रह-रह के दर्द करना। **चित्रगुप्त**—चौदह यमराजों में से एक, जो प्राणियों के पाप और पुण्य का लेखा रखते हैं। **अरकनि**=(अरकना) अरराके गिरना। **लोकपाल** = इन्द्रादि दिकपाल, यथा—इन्द्र, अग्नि, धर्मराज, निर्ऋति, वायु, कुबेर और शङ्कर। **हहरि**=घबरा करके। **खसन**=अपने स्थान से हटना। **त्रसन**=बेचैनी। **फनीस**=सर्पराज।

कविता-गायित्री—गहन=गहरा, कठिन। **गुहा**=गुफा। **तूठै**=संतुष्ट हो। **मिहिर**=सूर्य; मेघ; वायु। **दुर्मद**=कठोर मत्तता। **गोरोचन**=पीले रङ्ग का, एक प्रकार का सुगन्धित द्रव्य, जो गौ के हृदय के पास पित्त में से निकलता है। अष्टगन्ध के अन्तर्गत, तिलक लगाने में मङ्गलकारक।

नगर-वर्णन—अरूझै=उलझना। **भटू**=सखी, गोइयाँ। **रावरी**=आपकी। **रजाय**=आज्ञा, हुक्म, इच्छा।

काशी-वर्णन—ठठकि जात = एक बारगी ठहर जाना। साकेतपुरी = अयोध्या नगरी। चिदानन्द = चैतन्य और आनन्द-युक्त, परब्रह्म। लसत = शोभित। कराल = भयङ्कर। बीची = तरङ्ग, हर्ष। रूपलुनाई = रूप-लावण्य। आरोहत = नीचे से ऊपर जाता है, उत्थित होता है। देव-देव = ब्रह्मरूप विष्णु, शिव। सरसावति = उत्तमता प्रदर्शित करती है।

श्रीनगर-वर्णन—वितस्ता = कश्मीर की एक नदी का नाम है। कूल = किनारा। पुलिन = तट, किनारा। दुरत = दूर होने का भाव। पुरन्दर = इन्द्र, शत्रु का नगर ध्वंस करने के कारण पुरन्दर नाम पड़ा। शारिका = मैना। सित = श्वेत। अम्बु = जल। उन्मूलनकर = समूल नाशकारी। पोखनहारी = पोषण करने वाली। नय = नीति। अवतंस = अलङ्कार, भूषण। मुकुर = दर्पण। सुठि = सुन्दर। गह्वर = कुञ्ज। स्रवत = बहती है। द्रवत = टपकता है। तुहिन = बर्फ़। मौलि-माल = अशोक वृक्षों की पंक्ति। भ्राजति = शोभित होती है।

वृन्दाबन—सुखमा (सुषमा) = बड़ी शोभा। चारु = मनोहर। माधुरी = माधुर्य्य, मिठास, शोभा।

पृथ्वीराज-प्रयाण—सस्य (शस्य) = धान्य। मरुदेसा = रेतीली भूमि के देश में। कलुषित = अपवित्र। विरद = प्रशंसा।

जागुपिया—सिरानी = ठण्डी पड़ गयी, अस्त हो गयी। दिनमनि, (दिनमणि) = सूर्य।

प्राचीन समय में एक बार चीन देश की सीमा पर शत्रुओं ने भारी उपद्रव आरम्भ किया था। उसके दमन के लिए सेना भेजी जा रही थी। सेनापति ने प्रस्थान के दिन प्रातः अपनी पत्नी को एक कविता पढ़ कर जगाया था। इस कविता में उसी का भाव लिया गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें नवों रसों का—और यदि भक्ति और वात्सल्य को अलग गिना जाय, तो इसमें ग्यारहों रसों का—दिग्दर्शन हो गया है।

मदन दहन—मीनकेत=कामदेव। आनतरुनि=परस्त्री। बिहाई=छोड़ना, त्यागना। बाधित = बाधामय। सहसासन=शेषनाग। तदनु=पीछे। रोधि=रोकर। कुञ्चित=टेढ़ा। भङ्ग=विभाग, तोड़ना। रोर=हल्ला। मोह=मूर्छा। सपदि=उसी समय। शम्बरासुर—एक दैत्य जो बड़ा मायावी था; इन्द्रजाल-विद्या का आचार्य।

शक्ति-वन्दना—यातुधान=राक्षस। दिग्पाल=पुराणानुसार, दसों दिशाओं के पालन करने वाले देवता। यथा—पूर्व के इन्द्र, अग्निकोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैर्ऋत कोण के नैर्ऋत, पश्चिम के वरुण, वायु कोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान कोण के ईश, ऊर्द्ध दिशा के ब्रह्मा तथा अधोदिशा के अनन्त। अमान=असीम।

यशोदा-उद्धव-संवाद—नवनी=नवीन, अधपका घृत। दव=बनाग्नि। पुलक=रोमाञ्च। स्निग्ध=गाढ़ा चिकना, प्रेमयुक्त, मनोहर। मूरि=मूल, जड़। खनि=

खान। भूजात=वृक्ष । विकच=विकसित, खिला हुआ। चिहुँक=चौंकना ।

कौशल्या-विलाप—स्वेद=पसीना, श्रम-बिन्दु। पवि=वज्र, इन्द्र का शस्त्र। उदासी=रागद्वेष-रहित। अजिन=शेर, चीता या हाथी का चर्म। उपल=पत्थर। आर्ति=पीड़ा। याम=पहर। अम्बु=माता।

भ्रमरदूत—भ्रमर=उद्धव का एक नाम है। मोचति=मुक्त करती है, छोड़ती है। निसरन=निकलना। उनई=उदय हुई। लोल=चञ्चल। पुञ्ज=समूह।

छिन्नमस्ता आवाहन—प्रशस्ता = प्रशंसा-पूर्ण, श्रेष्ठ ध्वस्ता=गिरी हुई, पतित। छिन्नमस्ता = एक देवी, जो महाविद्याओं में छठी हैं। लवणाब्धि=लवण सागर। कङ्कनी = ककना पहननेवाली स्त्री। डङ्कनी=एक पिशाची, जो काली के गणों में मानी जाती है। अराति=शत्रु। शतधा = दूब। कबन्ध= शिर-रहित शरीर। भूधर = पर्वत। पयाब्धि= दुग्ध-सागर। शङ्करादि=कैलाश। सोम=यमराज वासव=इन्द्र। शक्र=इन्द्र। करालिनी=अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक, डरावनी। रोधिनी=रोकनेवाली कृतान्त=यम, शनैश्चर। कुगोल = पृथ्वीमण्डल खगोल=गोलाकार आकाश।

शरद-वर्णन—सप्तछद=(सप्तच्छद) सप्तपर्ण-वृक्ष। श्रोणि= नितम्ब, कमर।

बसन्त—कसाला=कष्ट, तकलीफ़, कठिन परिश्रम। **बरियारो**=प्रभावशाली, बलवान। **कुन्तल**=केश-गुच्छ। **बलित**=सिकुड़न पड़ा हुआ। **पतीर**=पंक्ति।

निदाघी मध्याह्न—ऊष्मा=गर्मी। **भूरि**=बहुत। **दीप्ति**=कान्ति, चमक। **प्रत्यूष**=प्रभात।

वर्षा-वर्णन—गयन्द=बड़ा हाथी। **केकी**=मोर। **पुण्ड-रीक**=श्वेत कमल। **सिखी**=मोर। **करि**=हाथी। **गवेन्द्र**=अच्छा साँड़। **नगेन्द्र**=पर्वत-राज हिमालय।

मयंक-महिमा—मेचक=काला। **चिकुर**=सिर के बाल। **मकरन्द**=पराग। **उपल**=चट्टान, रत्न, पत्थर। **मातंग**=हाथी। **मार**=कामदेव। **माठ**=माठा। **मन्मथ**=कामदेव। **कलधौत**=चाँदी।

चन्द्रोदय—अभ्र=आकाश। **मीनकेत**=कामदेव। **नख-च्छत**=वह दाग जो नाखून के गड़ने के कारण बना हो। **शिशुमार**=सूस नामक जलजन्तु। **चन्द्रचूर**=महादेव।

चमेली—अंशुमाली=सूर्य।

चाँदनी—कुन्द=कुँदरू वृक्ष का फूल, कमल। **सेत**=सफ़ेद। **मछन्दर**=(मत्स्येन्द्रनाथ) एक प्रसिद्ध साधु और हठयोगी, जो गोरखनाथ के गुरू थे। नेपाल में ये पद्मपाणि नामक बोधिसत्व के गुरू भी माने जाते हैं।

आमन्त्रण—प्रतिरूप=प्रतिबिम्ब। **कलंब**=कदम्ब का वृक्ष। **करंबित**=जुड़ा हुआ। **अञ्जनवर्ण**=काला। **झाईं**=

परछाईं, छाया । हीरक = हीरा, लाल । हेम = स्वर्ण । मरक्त = (मरकत) हरे रंग की एक मणि । कलाप = अलंकार । सरसी = झील, तालाब ।

प्राकृतिक-सौन्दर्य्य— प्रकृति-परी = प्रकृति रूपिणी अप्सरा । नखत मुकत = नक्षत्र रूपी मोती । बाल-हंस = प्रातःकालीन सूर्य्य, हंस का बच्चा । नलिनी-तिय-मुख = कमलिनी-रूपिणी नारी के मुख पर । करनि = किरणरूपी हाथों से । कर = किरण, हाथ । निसिनवनारि = रजनी रूपिणी नव-बाला । छपा-भठियारि = रात्रि रूपिणी भठियारी । सितारन = सलमा-सितारा, तारागण । छन्द = समूह । अम्बर = वस्त्र, आकाश ।

अन्तर्जगत से— हिमकर = चन्द्रमा । प्रत्यावर्तन = अत्यधिक चक्कर काटना । क्षोभ = व्याकुलता ।

बम्बई का समुद्र-तट— मदकल = मस्त हाथी । मदीय = मेरा । तदीय = उसका, तत्सम्बन्धी ।

स्मृति— गोधूलि = सायंकाल, जब गौवें थान पर लौटती हैं । छद्म = कपट-वेष । उच्छ्वास = साँस का बाहर निकालना, आह भरना ।

श्मशान— सैकत = रेतीली । देव-सरि = भागीरथी । इन्दु-कर = चन्द्र-किरण । क्षिति = पृथ्वी । अनय = अशुभ-विपद । वनज = कमल । लाल = प्रिय बालक ।

खँडहर से— विगत = गया हुआ । प्रतिशोध = बदला । रहस्य = गोप्य, गुप्त रखने की बात ।

रत्नावली—सहस्रदल=कमल। नन्दन=इन्द्र का उपवन, एक पर्वत। सुरबाला=षोड़शवर्षीय देव-कन्या। अन्तस्तल=हृदयतल, अन्तःकरण। मसौदा=मसविदा, खर्रा। आमिषपूर्ण=रिशवत से भरा हुआ। बाजी=दाँव, शर्त। मनुहार=मनौआ, ख़ुशामद। निगोड़ा=दुष्कर्मी। व्यापक=सर्वत्र रहनेवाला। अशेष=पूर्ण। शेष=सर्पराज। आराध्य=पूजने योग्य।

उद्गार—उद्गार=बहुत दिनों से मन में रक्खी बात का इकबारगी कहना। तरणी=किश्ती। तमोधाम=अन्धकार-निवास।

घट—कर्कश=कठोर, क्रूर। निर्मम=ममत्त्वरहित। म्रियमाण=मृतप्राय। अगम=अथाह। आर्तनाद=करुणाजनक ध्वनि। रिक्तता=सूनापन।

विप्लव गायन—विप्लव=उपद्रव, उथल-पुथल। त्राहि=बचाओ, रक्षा करो। सद्भाव=शिष्ट विचार। वक्षस्थल=शरीर में छाती का भाग। कालकूट=समुद्र-मंथन के समय निकला हुआ विष। विगलित=गला हुआ, नष्ट। गतानुगति=अन्धविश्वास। अन्तरिक्ष=पृथ्वी और सूर्यादि लोकों के बीच का स्थान। महारुद्र=शिव। युगुलांगुलियाँ=दो अँगुलियाँ। रुद्ध=रुका हुआ, घिरा हुआ। क्षुब्ध=व्याकुल, कम्पित। परिचालन=चलाने की क्रिया। पेखो=देखो। राज़=भेद, गुप्त बात। भ्रूविलास=भवों की क्रीड़ा, उनका संचालन।

गीत—मसि=स्याही । सित=सफ़ेद । अक्षय=जिसका नाश न हो । विभ्रम=स्त्रियों का विलास, शोभा। इंगित=मनोविकार के प्रकट करनेवाली शरीर की चेष्टा. संकेत । प्रवाल=मूँगा । सस्मित= मुसकुराता हुआ । मधुरस=मीठा रस । अवगुंठन=घूँघट । तारक=आँख की पुतली । अभिसार = नायक-नायिका का संकेत-स्थान पर एकत्रित होना, साधन, सहाय्य।

स्मृति या विस्मृति—रँगरलियों=आमोद-प्रमोद । अभिनव =बिल्कुल नया। आभास=प्रतीति। विस्मृति=विस्मरण।

तुम और मैं—शृङ्ग=पर्वत की चोटी। खर=तेज धार-युक्त। नूपुर=पैर का आभूषण। रागानुग=राग, प्रिय वस्तु के प्राप्त करने की अभिलाषा। अनुग=अनुगामी। निश्छल =छलरहित। प्राप्ति = धनआदि की वृद्धि । वेणी = केशों की रचना-विशेष। कुन्द=कुँदरू वृक्ष का फूल । इन्दु=चन्द्रमा । अरविन्द = कमल । रेणु = धूलि । दुस्तार =(दुस्तर) कठिन। व्याप्ति=शिव का ऐश्वर्य्य। निशीथ= आधीरात । मृदुगति= मंदचाल विशेष । दिग्वसना=दिशा के वसनवाली । तड़ित्तूलिका= बिजली की कलम।

आँसू—भाटी=भट्ठी । मधुक=महुआ । गोइ=छिपाना। उसाँस = बीच, रास्ता, उच्छ्वास । याग = यज्ञ उमगि= उमँग के साथ । बिलानी=लुप्त हुई । उफ़

नानी = उबल पड़ी हैं। नैसुक = थोड़ा। अहेरी = शिकारी-व्यापार। हेरे = देखे। दिपैहै = प्रकाशवान रहेगा। लौ = दीप-शिखा।

प्रभात—बदरि = बेर का पौदा। बिरछ = वृक्ष। तोमहि = समूह को। मरीचिका = किरण। श्री हरिधाम = बैकुंठ, विष्णुलोक। कोरी = अव्यवहृत, नयी। भोरी = भोली।

प्रशस्त पाठ—प्रशस्त = प्रशंसा के योग्य अति श्रेष्ठ। प्राण = हृदय में रहनेवाला वायु। अपान = गुह्य स्थान का वायु। उदान = गले में रहनेवाला वायु। सव्यान = समस्त शरीर में व्यापक वायु सहित। ध्रुवध्येय = निश्चल उद्देश्य। अविकल्प = असंदिग्ध, निश्चित। रोप = उत्पन्न करना, लगाना। भट = योद्धा। प्रपञ्च = ठगना। झखमार-चुके = व्यर्थ समय नष्ट कर चुके। निगमागम = वेद-शास्त्र। तंत्र = तंत्र-शास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ। प्रगल्भ = प्रतिभाशाली। वञ्चक = धूर्त्त, ठग। प्रमाद = असावधानी। नरमण्डल = समाज। उपहास = हँसी, मज़ाक़। मनोज-विलास = काम-क्रीड़ा। पटुता = चतुरता। प्रतिभा = वह बुद्धि जो-तुरन्त काम देने वाली हो। रसरंग = भोग-विलास। अधिराज = चक्रवर्ती राजा।

नया फूल—फूल की कहानी—आसावरी = श्रीराग की एक रागिनी।

सज्जनों का स्वभाव—सुहास = सुन्दर हास। विकास = खिलाना। पयोधि = समुद्र। सविपुल = अतिशय सहित।

वन-विहंगम—विहंगम = पक्षी। वितान = चँदोवा। सुरभी = गाय। कानन = वन। कौशल = चतुरता। प्रवाद = जन-श्रुति। कल = अत्यन्त मधुरध्वनि या शब्द। कूजन = शब्द करने की क्रिया। समुहाय = सम्मुख आके। अन्तक = अन्त करनेवाला, यमराज, काल, ईश्वर, मृत्यु।

दीपक की आत्म-कथा—गेह = घर। निरवापित = बुझाना, अन्त करना।

सौन्दर्य—अनुताप = दुःख, पछतावा। उन्मत्त = पागल। सार = तत्व।

प्रतिज्ञा—सन्ध = संयोग, जोड़। वर्म = कवच। त्रस्त = भयभीत, पीड़ित। भद्र = शिष्ट। लोलुपता = लालच। खनूँगा = खोदकर ढूँढ़ूँगा। दधीच = अथर्व मुनि के पुत्र, जिनकी हड्डियों से देवताओं का बज्र निर्मित हुआ था, जिससे इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया। प्रहलाद = हिरण्यकशिपु-नामक दैत्य का पुत्र, जो ईश्वर का परम भक्त था। दुर्व्यूह = कठोर गिरोह। सौभद्र = सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न अभिमन्यु, जिसने चक्रव्यूह का भेदन किया था। निषङ्ग = तर्कश। दुष्कृत्य = दुष्कर्म। मारुति = हनूमान। त्वरित = शीघ्र। पर-पाश = दूसरों का जाल।

पुस्तक-प्रेम—भाता = अच्छा लगता। कुबेर = उत्तर दिशा के राजा, धन-सम्पत्ति के अध्यक्ष।

क्या मोल—कलिका = कली।

पछतावा—कल्मष = नर्क, पाप। हाट = बाज़ार। निबिड़ालिंगन = हृदय से हृदय मिलाकर इस तरह भेंटना कि बीच में कोई छिद्र तक न रहे। उत्कण्ठा = चिन्ता तक पहुँची हुई असीम इच्छा। सरसता = रसीलापन। कर्कशता = निर्दयता, कठोरता। प्रतिकार = बदला लेना।

स्मृति—अनित्य = नश्वर, क्षणिक। सरेगा = पूरा होगा। निकेत = घर। क्रन्दन = रोना, चिल्लाना। विरस = रसहीन, शुष्क। दिव्य = शोभायमान, मनोहर। निर्माण = रचना। बिगलित = गला हुआ, नष्ट। स्वीय = अपना। शैशव = बाल्यावस्था। अपहार = विनाश।

मोक्षासव—व्यामोहान्ध = जो पश्चात्ताप की पीड़ा से अन्धा हो गया हो। तृष्णा = लालच की अधिकता। जंगम = चलने वाला। जड़ = गति-रहित, ठहरा हुआ। अनित्यता = क्षणिकता। नित्यता = सदासर्वदा के स्थायीपन का भाव। स्पन्दन = धड़कन। घोष = शोर, बादलों की गरज। गुरु प्रमाद = अत्यधिक असावधानी। अन्तर्दृग = अपने आपको देखनेवाले नेत्र। पक्षाघात = लकवा मार जाना। मण्डूक = मेढक। अद्वैत = अकेला, विष्णु। परमितता = तोलयुक्तता। सम्भ्रम = चक्कर काटना, घबड़ाहट।

कुटीर का पुष्प—विजन = जन-शून्य, एकान्त। कुटीर = झोंपड़ी। मधुकर मंडित = भौंरों से सजा हुआ। आरामों = वाटिकाओं। कामस्थल = इच्छा का घर।

मातृभूमि—नीलाम्बर=नील आकाश । परिधान=पहिरा हुआ, पहिरने का वस्त्र । अभिषेक=राजपद ग्रहण करने पर तिलक की रस्म, बाधा-शान्ति के लिए मंत्र से जल छिड़कना । सगुण = गुण-सहित, सांसारिक । अभ्रंकष= आकाश के साथ संघर्ष करने वाला अर्थात् गगन-स्पर्शी । प्रासाद=राजमहल । जठरानल = पेट की अग्नि । प्रत्युपकार=बदले में उपकार करना । तरणि= सूर्य । घनावलि = बादलों की पाँत । सात्त्विक भाव = ज्ञान, शान्ति और संतोष से युक्त प्रकृति का एक गुण । क्षेममयी=कुशलता से पूर्ण । प्रेरा=प्रेरणा किया हुआ, भेजा हुआ । भवबन्धन-मुक्त=संसार के बन्धन से छूटा हुआ । आत्मरूप=ब्रह्म ।

प्यारा हिन्दुस्तान—स्रोत= सोता, स्वयं पानी का बहना । सदुन्नति=अच्छी उन्नति ।

भारतमाता की स्मृति—सुषमा = शोभा की महानता । कमला=लक्ष्मी । ऋद्धि=सम्पत्ति की बढ़ती, उन्नति, सफलता । सिद्धि=योग की आठ सिद्धियाँ—अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्त्व और वशित्त्व ।

अभिलाषा—आशावादी=आशा पर अवलंबित रहनेवाला ।

मातृभाषा—कालिन्दी = यमुना । झिझकाता= झिझक उत्पन्न करता, संकोच लाता । प्रेमोन्मत्ता =प्रेम की पागल ।

वंगदेश का सौन्दर्य—ऊषा = प्रभात बेला । चरणोदक = चरणों को धोया हुआ जल, चरणामृत । रसा = पृथिवी । शाल या साल = एक प्रकार के वृक्ष । लता-पाश-आबद्ध = लताओं के जाल से जकड़ा हुआ । चश्मे = सोते । विकल = विह्वल, घबराया हुआ । नारि-केल = एक फल-वृक्ष । केशकेतु = केश रूपी ध्वजा । प्रेयसि = प्यारी स्त्री । रम्भा = केला, अप्सरा । रम्भ = वेणु, एक प्रकार के वानर । झिलमिल = रहरहकर प्रकाश के घटने-बढ़ने की क्रिया । दाराएँ = स्त्रियाँ । केहरि-गति = सिंह-चाल ।

हिन्दू—लक्ष्य = उद्देश्य का सबसे ऊँचा रूप । अवनि = पृथिवी । दर्शक = अध्यात्म-ज्ञान । कलेवर = शरीर । आडम्बर = दिखलावा । मनस्वी = बड़े दिलवाला । व्यङ्गय = ताना, चुटकी । बर्बरता = नीचता ।

बोधि-वृक्ष से—बोधि-वृक्ष = गया में स्थित पीपल का वह पेड़, जिसके नीचे बुद्ध भगवान ने ज्ञान प्राप्त किया था । आतुर = इच्छुक । अमिताभा = असीम सुन्दरता, असीम-शोभा । जगतीतल = संसार । संसृति = जन्म पर जन्म लेने की परम्परा, आवागमन । संतप्त = रास्ते के चलने आदि से थका हुआ ।

अशक्त सेवी—विमोह-मग्न = विशेष मोह में लिप्त । मंगल = आनन्द, सुख । सशंक = शंकायुक्त, डरा हुआ । अशंक = निडर, अशत्रु । छितितल = पृथ्वी ।

युवा संन्यासी—मतिमान = बुद्धिमान । विप्रकुलकेतु = ब्राह्मण वंश में श्रेष्ठ । विरक्त = वैरागी । विराग = अप्रीति ।

रियाज़ी = गणित । त्यागी = सांसारिक नित्य कर्मों का त्याग करनेवाला । द्रवीभूत = पिघला हुआ । सत्वर = शीघ्र । पारग = पार जानेवाला । लुगाइन = स्त्रियाँ । एवमस्तु = एवम् = ऐसा, इस प्रकार + अस्तु = हो । तड़ित = बिजली । आतपत्र = छाता । श्वापद = चीता । तत्पद = उसके चरण ।

अन्योक्ति सप्तक—नदान = नासमझ । ग्रसि = इस तरह पकड़ना कि छूट न सके । शमन = शान्ति । मतंगन = हाथियों । स्याने = सियाना, चतुर । ससा = खरगोश । भदेस = भद्दा, कुरूप ।

आत्म-पुकार—जग-विकार = सांसारिकता का रोग । हिय-पट = हृदय रूपी परदा ।

उन्माद—निपात = पतन, गिरना । साह्लाद = हर्ष के सहित । गुणवाद = गुणों का वर्णन । संस्थान = निवास, निकटता । कृतार्थ = सफल ।

रूप-राशि—अधर = ओंठ । नीड़ = स्थान । धूममयी = धुएँ से पूर्ण । प्राची = पूर्व दिशा ।

परिवर्तन—भूति = भाव, सफलता, संपत्ति, शोभा । दिगन्त-छवि जाल = दिशाओं के अन्त तक पहुँचा हुआ शोभा का जाल । साभार = भार के सहित । शाश्वत = लगातार, सनातन । विहार = रति-क्रीड़ा का स्थान । मधुमास = वसन्त । जरा = वृद्धावस्था । भूपात =

भूकम्प। कच = केश। विधुर = स्त्री-हीन पुरुष। कल्प = ब्रह्मा का एक दिन, जो चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का होता है। अवसाद = विषाद। अचिरता = शीघ्रता। विवर्तन = घूमना-फिरना, परिभ्रमण। नयनोन्मीलन = आँख खोलना। फूत्कार = फुफकार। घनाकार = बादल के आकार का। गरलदन्त = विष के दाँत। कञ्चुक = कवच। कल्पान्तर = महाप्रलय। विवर = गढ़ा, मुख, सूराख। वक्र = टेढ़ा।

आँसू—अनुताप = खेद, पश्चात्ताप। उद्भ्रान्त = भ्रान्तियुक्त, भूला हुआ।

आँसू की बूँद के प्रति—रम्य = सुन्दर। मूक = बोलने की शक्ति से हीन।

देव-देव—सुषुप्ति = गाढ़ निद्रा। समावृत = अच्छी तरह से ढका हुआ। लुब्ध = लोभी। तमिस्र = अँधेरा। जायाहूँ = पैदा किया हुआ। वदनारविन्द = मुख-कमल। नितान्त = अत्यन्त, अतिशय। ध्वान्त = एक नरक का नाम। ओजोमयी = तेज, बल, प्रतापवाली। गरिमा = गुरुता, बड़ाई। विभूति = विभव, सिद्धि। मंजुल = मनोहर, सुन्दर। मयूख = किरण, तेज, ज्योति। धृता = धारण की हुई, स्थिर की हुई। सकाश = निकट, उपस्थित। वीत = गया हुआ, मुक्त, व्यतीत। वहित्र = नौका। विधान = विधि, रीति। अजस्र = सदा, निरन्तर।

गीत—भीर = समूह । अलस = मंद । सिहर = कम्पन । उन्मन = उत्कण्ठा, चिन्ता, व्याकुलता युक्त । सुपमित = शोभित । विटपी = जिसमें नयी शाखा व नयी कोपल आगयी हों । दोल = हिंडोला । हीर = एक मणि ।

पीपल—मृणाल = कमल-नाल । तिर-तिर करते = बूँद-बूँद-टपका के । मर्मर = पेड़ की शाखाओं तथा पत्तियों के हिलने का शब्द । वन्य प्रान्त = वन के प्रदेश । वल्लरी = लता ।

यौवन की वेला—मंजु = मनोहर । मंजरी = बौर । किसलय = नवीन पत्ते, अँकुए । मुकुलित = जिसमें कलियाँ आई हों । कसकन = धीरे-धीरे पीड़ा होना ।

शिशु चित्रकार—वंक = तिरछाव, घुमाव ।

रजकण—इत = इधर । उसासन = आहें भरना । किमि = किस प्रकार । इमि = इस तरह । अलौकिक = अनोखे, अद्भुत । वृतन = वृत (सामर्थ्य, शक्ति) का बहुवचन । बगूलन = बवंडर, हवा का चक्कर किरी = धूल या तिनके का कण ।

भारतेन्दु के प्रति—मजनू = अरब के एक प्रसिद्ध सरदार का पुत्र, जिसका असली नाम क़ैस था और लैला नाम की एक नवयुवती पर आसक्त होकर उसके प्रेम में पागल हो गया था । बलिहारी = निछावर । नश्वर = नाशवान । काया = देह । पाटल = गुलाब ।